जीवन-पथ पर चलते चलते....

विष्णुकान्त शास्त्री

हमारे उपलब्ध प्रकाशन

• राम प्रताप

छत्तीसगढ़ी कवि संत भास्कर चूड़ामणि गोपाल दास कृत 'राम प्रताप' ग्रंथ १४० वर्ष पुरानी पांडुलिपि का प्रकाशित रूप है। विविध भाषाओं, विभिन्न छन्दों तथा अनेक राग-रागिनियों से युक्त यह पुस्तक राम-काव्य परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

पृष्ठ संख्या : ६४४ मूल्य : २०० रु.

• फिर से बनी अयोध्या योध्या

अयोध्या में श्री राम मंदिर के उद्धार हेतु चले जन-आंदोलन को अपनी ओजस्वी वाणी में अभिव्यक्त करती हुई ४२ कवियों की ४८ रचनायें।

पृष्ठ संख्या : ९५ मूल्य : ३० रु.

• सूरदास : विविध संदर्भों में

सूर-पंचशती के अवसर पर प्रकाशित आलोचनात्मक ग्रंथ, जिसमें देश के शीर्षस्थ विद्वानों एवं लेखकों के आलेख संकलित हैं।

पृष्ठ संख्या : ३८६ मूल्य : १०० रु.

• अमर आग है

श्री अटलबिहारी वाजपेयी के कुमारसभा पुस्तकालय में १९९४ में आयोजित 'एकल काव्य पाठ' के अवसर पर प्रकाशित ४१ प्रमुख कविताओं का संग्रह।

पृष्ठ संख्या : ६४ मूल्य : २५ रु.

• बड़ाबाजार के कार्यकर्ता : स्मरण एवं अभिनंदन

कलकत्ता महानगर के पिछले १५० वर्षों के कालखण्ड में कर्मरत लगभग ७०० साहित्यकारों, कलाकारों तथा सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं का इतिवृत्त।

पृष्ठ संख्या : ४३८ मूल्य : १०० रु.

• महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन

जन्मशती के अवसर पर हिन्दी के कालजयी साहित्यकार सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के साहित्य पर देश के ३४ शीर्ष विद्वानों के आलेखों वाला बहुचर्चित आलोचना ग्रंथ।

पृष्ठ संख्या : ३३० मूल्य : १५० रु.

• मानस अनुक्रमणिका

तुलसी पंचशती वर्ष में गोस्वामी जी के सर्वाधिक प्रचलित ग्रंथ श्रीरामचरितमानस की पंक्तियों का अकारादि क्रमानुसार संदर्भ कोश।

पृष्ठ संख्या : ३९० मूल्य : २५० रु.

विष्णुकान्त शास्त्री

जीवन-पथ पर चलते चलते

सम्पादक :
डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी

प्रकाशक :
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
कलकत्ता

प्रकाशक :
कृष्ण स्वरूप दीक्षित, उपाध्यक्ष
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१सी, मदन मोहन बर्मन स्ट्रीट, कलकत्ता - ७
टेलीफैक्स : २३८-८२१५

❑

© आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

❑

मई १९९९
२५०० प्रतियाँ

❑

मूल्य : साठ रुपए

❑

अक्षर संयोजन :
जवाहिर प्रिन्ट्स
१६१/१, महात्मा गाँधी रोड
कलकत्ता - ७०० ००७

❑

आवरण सज्जा : श्रीजीव अधिकारी
आवरण मुद्रक : महेश दाणी

❑

मुद्रक :
ऑफसेट प्रोसेस
६/३, एम. सी. घोष लेन, हावड़ा - १

Jeevan–Path Par Chalte Chalte (Hindi Poems)
by Acharya Vishnu Kant Shastri
Edited by Dr. Prem Shanker Tripathi Price : Rs. 60/-

कविता और मैं

कविता मेरे लिए प्रीतिकर जीवन-ऊर्जा है। अनुकूल- प्रतिकूल परिस्थितियों में मुझे बराबर कविता से शक्ति मिलती रही है। बचपन में ही मुझे यह पता चल गया था कि अकेला आदमी दुखी आदमी है, जीवन दूसरों से जुड़कर ही समृद्ध होता है। मैं संयुक्त परिवार में पला, बढ़ा; अब भी संयुक्त परिवार में ही हूँ। परिवार में भी और समाज में भी मैंने इस बात का अनुभव किया कि जुड़ने का आधार यदि केवल प्रयोजन हो तो सम्बन्धों में न स्थायित्व आता है, न माधुर्य ! प्रयोजन चुक जाने पर सम्बन्ध भी चुक जाते हैं। यह ठीक है कि संबंधों का एक आधार प्रयोजन है किन्तु केवल प्रयोजन से ही सम्बन्ध सरस नहीं बनते। प्रयोजन यदि संकुचित हो तो वह स्वार्थ का ही दूसरा नाम है। तुलसी बाबा कह गये हैं 'सुर, नर, मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।' किन्तु यह प्रीति कितनी अस्थिर है इसे भी वे उजागर कर गये हैं, 'स्वारथरत परिवार विरोधी' कहकर।

मुझे यह भी लगता रहा कि प्रयोजन के बिना भी बात नहीं बनती। कहा ही है 'प्रयोजनं बिना मन्दोऽपि न प्रवर्तते' बिना प्रयोजन के तो मूर्ख भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। फिर मुझे यह भी लगा कि प्रयोजन जितना बड़ा होता है, उतना ही वह संकीर्ण स्वार्थ से दूर और परमार्थ के निकट पहुँचता है। तब कोई बिन्दु तो ऐसा होता होगा जिस पर महत् प्रयोजन भगवत्प्रीति की तरह सच्चे स्वार्थ और परमार्थ को अपने में समाहित कर लेता होगा। प्रयोजन के उस स्तर को स्पर्श करने वाला सम्बन्ध स्थायी भी होता है और सरस भी, ऐसा मेरा अनुभवजनित विश्वास है। मैं बहुत विनम्रता के साथ कहना चाहता हूँ, कविता के साथ मेरा ऐसा ही सम्बन्ध है। वह मुझे विश्व-ब्रह्माण्ड और समाज से ही नहीं, अपने आप से भी जोड़ती है क्योंकि वह उदात्त स्वार्थ और परमार्थ को, व्यक्ति और समाज को अपने में सँजोये रहती है।

कविता-प्रीति मुझे उत्तराधिकार में मिली है। मेरे पिता स्व० पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री तो प्रख्यात कवि थे ही, मेरी माता भी कविता रचा करती थीं। कैशोर्य और तारुण्य की संधि के मेरे तीन वर्ष (१९४२ से १९४४ तक) बनारस में बीते। उन दिनों वहाँ के सांस्कृतिक जीवन का ध्रुवपद कवि सम्मेलन था। निराला, बच्चन, दिनकर, श्यामनारायण पाण्डेय, शांतिप्रिय द्विवेदी, सीताराम चतुर्वेदी, गोपाल सिंह नेपाली, बेढब बनारसी, बेधड़क बनारसी, चोंच बनारसी, रुद्र, शंभुनाथ सिंह, गुलाब, गोपेश आदि को उन दिनों अनेकों बार मैंने सुना था। जो कविताएँ मुझे अच्छी लगतीं, याद हो जातीं। मैं उनका पाठ अपनी तरह से करता। मेरा स्वर मधुर नहीं था अतः मैं गा नहीं सकता था। फलतः कंठस्थ कविताओं को अपने ढंग से सुनाने की चेष्टा करता। कक्षाओं और मित्रों की गोष्ठियों में जब मैं प्रतिष्ठित कवियों की अच्छी रचनाएँ सुनाता तो श्रोता पुलकित हो जाते थे। उनकी वह पुलक कविता याद करने और उन्हें अपने ढंग से सुनाने के मेरे नशे को तेज कर देती थी। चढ़ती जवानी का वह संस्कार आज सत्तर वर्ष की आयु में भी मुझे जवान बनाये हुए है। मैं इसे प्रभु-कृपा ही मानता हूँ कि अध्ययन क्रम में विज्ञान और कानून के गलियारों से होता हुआ मैं पुनः साहित्य के राजमार्ग का पथिक बना और आज भी उसी पर चल रहा हूँ। इसके चलते कविता से मेरा सम्बन्ध और सुदृढ़ हुआ।

हिन्दी, बँगला, उर्दू के अनेकानेक श्रेष्ठ कवियों के व्यक्तिगत सम्पर्क ने भी मेरी काव्य-पिपासा को तीव्र किया। मुझे अच्छी कविताओं से प्रेम है। मैं कविताओं को खेमों में बाँट कर पसन्द-नापसन्द नहीं करता। संकीर्ण शिविरबद्ध आलोचना ने कविता को बहुत क्षति पहुँचायी है, ऐसा मैं मानता हूँ। हिन्दी, संस्कृत, बँगला, उर्दू (कुछ मात्रा में अंग्रेजी) की न जाने कितनी कविताएँ मुझे याद हैं। केवल कक्षाओं या साहित्यिक गोष्ठियों में नहीं, जीवन के विभिन्न सन्दर्भों में, विभिन्न स्थानों पर ..... कह सकता हूँ कारागार से युद्ध-क्षेत्र होते हुए संसद तक मैंने सर्वसाधारण और अतिविशिष्ट लोगों को समयानुकूल अच्छी कविताएँ सुना कर आनंद दिया है और आनन्द पाया है। दुःख और

शोक के कठिन प्रसंगों को भी कविता के वरदान के कारण मैं एक बड़ी सीमा तक बिना टूटे झेल पाया हूँ। कह सकता हूँ, कविता श्वास-प्रश्वास के समान ही मेरी अनिवार्य आवश्यकता बन गई है।

अत: यह स्वाभाविक ही था कि जीवन के संवेदनशील क्षणों में मेरे भाव और विचार भी कविता का रूप धारण कर लेते। प्रभु-कृपा से मुझमें यह विवेक भी जगा रहा कि मैं कविहृदय तो हूँ किन्तु वस्तुत: कवि नहीं हूँ। इसीलिए मैं मित्रों, स्वजनों को अच्छी कविताएँ सुनाता रहा, अपनी कविताएँ नहीं। मित्रों के दबाव में १९५५-५६ तक गोष्ठियों में मैं अपनी कविताएँ कभी-कभी सुना दिया करता था किन्तु उसके बाद मैंने प्रयासपूर्वक इस निश्चय को क्रियान्वित किया कि मुझे `कवि यश: प्रार्थी' नहीं होना चाहिए। अपनी कविता न सुनाने का अर्थ यह तो नहीं था कि जीवन के विशिष्ट अनुभवों को कविता में ढालना ही नहीं चाहिए। अत: बहुत धीमी गति से सही कुछ कविताएँ उतरती ही रहीं और एक कापी में संकलित भी होती रहीं। यह भी सच है कि इन रचनाओं में बड़े कवियों की उक्तियों की अनुगूँज अनेक स्थलों पर लक्षित की जा सकती है। मैं इसे अध्ययनशील कवि हृदय की लाचारी ही मानता हूँ।

मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैंने प्रयासपूर्वक बहुत कम कविताएँ लिखी हैं। ये कविताएँ परिस्थितियों के दबाव के कारण अनायास उभरती रही हैं। जीवन-क्रम में जैसे-जैसे मोड़ आये हैं, वैसे-वैसे स्वर इन कविताओं में मुखरित हुए हैं। इनमें राष्ट्रीयता, प्रेम और भक्ति की क्रमिक प्रधानता मेरे जीवन की विकास यात्रा के अनुरूप ही है। इसीलिए इस संकलन का नाम **`जीवन-पथ पर चलते चलते'** ही रखना मुझे उचित लगा।

बांगलादेश के मुक्ति युद्ध के सहयोगी के रूप में मैंने बांगला देश सम्बन्धी रिपोर्ताज और लेख तो लिखे ही बांगलादेश की संग्रामी कविताओं का अनुवाद भी किया। सहृदयों को मेरा वह प्रयास पसन्द आया। भारतीय ज्ञानपीठ ने `संकल्प, संत्रास, संकल्प' के नाम से

नागरी लिपि में बांगलादेश की ५६ संग्रामी कविताओं को मूल रूप में मेरे काव्यानुवाद के साथ प्रकाशित किया। कवि के रूप में न सही, काव्यानुवादक के रूप में मेरी सेवा स्वीकृत हुई। अपनी प्रिय कविताओं का अनुवाद इसके पहले और बाद में भी मैं करता रहा। उस कृतित्व की कुछ बानगी भी इस संकलन में दी गई है।

इन कविताओं को प्रकाशित करने का मेरा कोई इरादा नहीं था। स्नेहभाजन प्रेमशंकर त्रिपाठी का हठीला उद्योग और उसके साथ जुगल किशोर जैथलिया तथा कृष्ण स्वरूप दीक्षित का सक्रिय सहयोग यदि न होता तो ये कविताएँ मेरी कापी में ही बन्द रह जातीं। प्रेमशंकर के आग्रह के सामने मुझे झुकना पड़ा। मेरी कविता की कापी वह लेकर ही माना। पहले उसने 'जनसत्ता' के 'सबरंग' परिशिष्ट में मेरी कविताओं पर एक लेख लिखा और फिर उसने लगभग ५५ वर्षों के कालखण्ड के मध्य रचित मेरी कविताओं से अपनी रुचि की कविताओं का चयन कर उनके प्रकाशन का हठ ठाना। जुगल जी और दीक्षित जी ने उसका समर्थन करते हुए इसके लिए मेरे इकहत्तरवें जन्मदिवस को उपयुक्त अवसर माना। इन तीनों बन्धुओं को मैं स्नेहाशीर्वाद ही दे सकता हूँ। पुस्तक के आकर्षक आवरण के लिए प्रिय महावीर बजाज को और बहुत कम समय में स्वच्छ एवं सुन्दर मुद्रण-संयोजन के लिए प्रीतिभाजन रमेश जैन और आशीष जैन को भी शुभाशीर्वाद।

यदि इस संकलन की कुछ पंक्तियाँ आपके हृदय को स्पर्श कर सकीं तो मैं अपने को कृतकृत्य मानूँगा।

अक्षय तृतीया श्री संवत् २०५६
२८०, चित्तरंजन एवेन्यू
कलकत्ता - ७०० ००६

— विष्णुकान्त शास्त्री

सम्पादक की ओर से

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री छात्रवत्सल प्राध्यापक के रूप में प्रख्यात हैं। इस गुण के चलते अपने पढ़ाए हुए सभी छात्र-छात्राओं में वे अत्यंत लोकप्रिय हैं। मैं इस अर्थ में भाग्यवान हूँ कि मुझे उनका स्नेह, सद्भाव, सौहार्द्र तथा आशीर्वाद अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त हुआ है। इसी नैकट्य ने मुझे यह अवसर दिया कि मैं शास्त्रीजी के कवि-रूप को इस ग्रंथ के माध्यम से आपके सामने प्रस्तुत कर पा रहा हूँ।

विष्णुकान्तजी का सर्जनात्मक साहित्य जिस रूप में उपलब्ध है उसमें उनका आलोचकीय रूप ही मुखर हुआ है। कविता के प्रति उनका अनन्य अनुराग उनके वक्तव्यों एवं लेखों में यदा-कदा भले ही व्यक्त हुआ हो कवि के रूप में उनकी पहचान नहीं ही रही है। समसामयिक मुद्दों एवं विविध प्रसंगों पर कवि के रूप में व्यक्त प्रतिक्रियाएँ उनकी एक 'कापी' में ही सीमित रही हैं। गुरुवर शास्त्रीजी की आत्मीयता ने ही दो वर्ष पूर्व यह मौका दिया कि मैं उनकी इस 'कापी' में लिखी कविताओं को पढ़ सकूँ। रचनाओं को देखकर मुझे लगा कि इन्हें प्रकाश में आना चाहिए और शास्त्रीजी के कवि रूप की भी चर्चा होनी चाहिए। मैंने यह बात जब अपने मित्र श्री अरविंद चतुर्वेद को बताई तो वे पुलकित हुए और उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि जनसत्ता 'सबरंग' के लिए विष्णुकांत जी की चुनी हुई कुछ कविताओं के साथ एक छोटी टिप्पणी लिखकर उन्हें दूँ। उस वर्ष जब ये रचनाएँ छपीं तो साहित्यिक मित्रों ने उनका व्यापक स्वागत किया। इस अनुकूल प्रतिक्रिया के बाद मैंने आदरणीय शास्त्री जी से कई बार आग्रह किया कि वे अपनी कविताएँ प्रकाशनार्थ किसी प्रकाशक को दे दें परन्तु इसके लिए राजी नहीं हुए। इसके पीछे साहित्यिक क्षेत्र में कवि के रूप में अपनी पहचान न कराने का उनका भाव तो था ही यह भाव भी था कि, '' मैं कवि हृदय तो हूँ किन्तु वस्तुतः कवि नहीं हूँ,''।

संयोग से श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री जुगल किशोर जैथलिया से जब इस संबंध में चर्चा हुई तो उन्होंने

पुस्तकालय की ओर से इस काव्य ग्रंथ के प्रकाशन का प्रस्ताव रखा तथा संस्था के उपाध्यक्ष श्री कृष्ण स्वरूप दीक्षित ने इसका जोरदार समर्थन किया। २ मई १९९९ को आदरणीय शास्त्री जी के ७१ वें जन्मदिन पर प्रकाशित करने की तिथि को उपयुक्त मानते हुए इसके प्रकाशन हेतु तत्परता बढ़ी। प्रारंभिक ना-नुकुर के बाद अंततः श्रद्धेय विष्णुकान्त जी को राजी होना पड़ा। कविताओं के चयन-विभाजन आदि का भार मेरे ऊपर आया।

अतः जो पुस्तक सीधे कवि के नाम के साथ जुड़कर प्रकाश में आती, उसमें सम्पादक के रूप में मैं भी सम्बद्ध हो गया। इसे मैं आदरणीय गुरुवर शास्त्री जी की अपने ऊपर अपार-कृपा ही मानता हूँ।

संग्रह की कविताओं को ५ खंडों में विभक्त किया गया है। प्रथम खंड में राष्ट्रीय कविताएँ हैं जिनका शीर्षक है, 'हो सचेतन राष्ट्र जीवन'। द्वितीय खंड में विविध भावधारा की रचनाओं को 'सर्जना आयाम विविधा' शीर्षक प्रदान किया गया है। तृतीय खंड में 'प्रेरणा देता किसी का प्यार' शीर्षकान्तर्गत प्रेमपरक कविताओं को संकलित किया गया है। चौथे खंड में भक्तिपरक रचनाओं को 'राम तुम्हारे चरण प्रेरणा स्रोत हमारे' के अंतर्गत रखा गया है। पाँचवें और अंतिम खंड में संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी की कुछ कविताओं का मूल पाठ और उनका काव्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है। कविताओं के पूर्व शास्त्रीजी के कवि-व्यक्तित्व पर मैंने एक टिप्पणी भी जोड़ दी है।

इस संग्रह में कविताओं को चुनने का उत्तरदायित्व केवल मेरा है। यह पुस्तक इतने कम समय में प्रकाश में न आ पाती यदि पुस्तकालय के व्यवस्थापटु मंत्री श्री महावीर बजाज तथा जवाहिर प्रिन्ट्स के श्री रमेश जैन एवं श्री आशीष जैन की निष्ठा इसके साथ न जुड़ती।

मुझे विश्वास है कि काव्यरसिक पाठक इन रचनाओं का स्वागत करेंगे।

— प्रेमशंकर त्रिपाठी
संपादक

विष्णुकान्त शास्त्री : एक सहृदय कवि

- डा० प्रेमशंकर त्रिपाठी

यों तो सारे देश में आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की ख्याति प्रतिष्ठित समालोचक, हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य विद्वान, उत्कृष्ट प्राध्यापक, प्रभावशाली वक्ता तथा एक स्वच्छ राजनेता के रूप में है परन्तु उनके भीतर एक सहृदय कवि भी है, इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को है।

शीर्षस्थ कवियों की कविताएँ याद करना और मित्रों को सुनाना तो उनका व्यसन है, ठीक वैसे ही जैसे ठहाका उनकी पहचान है। शास्त्री जी को संस्कृत के हज़ारों श्लोकों-सूक्तियों के साथ-साथ हिन्दी-बंगला की असंख्य कविताएँ याद हैं। साहित्य-गोष्ठियों में ही नहीं बल्कि बातचीत के क्रम में और यहाँ तक कि विधानसभा-राज्यसभा के वक्तव्यों में भी विष्णुकान्त जी सहज भाव से सामयिक कवितायें सुनाते रहे हैं। सभी काल के हर विचारधारा के कवियों की प्रभावी रचनायें उनकी स्मृति पटल पर अंकित हैं, आज भी वे नियमपूर्वक अच्छी कवितायें याद करते हैं।

विष्णुकान्त जी के अंतरंग भी उनकी स्वरचित दस-पाँच कविताओं से ही परिचित हैं और यह समझते हैं कि भावावेग के क्षणों में कभी ये रचनायें लिखी गई होंगी या तुकबंदियां जोड़ ली गई होंगी; परन्तु सचाई यह है कि कवि विष्णुकांत शास्त्री के पास भी अन्य कवियों की भाँति स्वरचित कविताओं की एक बड़ी कापी है जिसमें अनेक कवितायें हैं। ये कवितायें यह प्रमाणित करती हैं कि १९४३ से लेकर आज तक विविध संदर्भों से प्रेरित, प्रभावित, उद्वेलित होकर एक संवेदनशील कवि की भाँति शास्त्री जी भी अपनी काव्यात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहे हैं। कविताओं से यह भी स्पष्ट आभास मिलता है कि विज्ञान-स्नातक शास्त्री जी का साहित्य के प्रति झुकाव उनकी काव्यात्मक प्रतिभा के कारण ही हुआ होगा। कवि-पिता पंडित गांगेय नरोत्तम शास्त्री से प्राप्त कविता के संस्कार ने भी निश्चित रूप से पीठिका निर्मित की होगी।

शास्त्री जी ने पहली कविता १४ वर्ष की अवस्था में लिखी। तब से लेकर आजतक विविध भावों, विचारों, रसों तथा विभिन्न छंदों में लिखी गई रचनायें शास्त्री जी की डायरी में अंकित हैं। अधिकांश रचनायें छंदोबद्ध हैं परन्तु परवर्ती काल की अनेक कविताएँ मुक्त छंद में भी रचित हैं। सभी रचनायें यति-गति संपन्न होने के कारण प्रभाव एवं प्रवाह दोनों की सृष्टि करती हैं।

प्रारंभिक रचनाओं में गुलाम भारत को मुक्त कराने का आग्रह, राष्ट्रीयता जागृत करने की ललक तथा सुख-दुःख में सम रहकर भारत माता को आजाद कराने की प्रेरणा सन्निहित है :–

जग में सुख-दुख दोनों को जो झेल सके बस वही बहादुर।
दुख आने पर जो मुसकाये
सुख मिलने पर फूल न जाये
जीवन में जो सत्य न्याय पर दृढ़ रहता हो वही बहादुर।
कष्टों से तुम मत घबराओ
धीरज धर कर बढ़ते जाओ
आजाद करो भारत माँ को बनकर सच्चे वीर बहादुर।

कवि युवकों को विजय के आत्म बल से पूरित करना चाहता है :

शत्रु पर कर दो भीषण वार
विजय है निश्चित अबकी बार।

अँधेरे के खिलाफ रोशनी का संघर्ष जारी रखने तथा भारतमाता के लिए सर्वस्व निछावर कर देने का कवि का आह्वान है:–

अंधकार से भरी रात्रि है फिर भी रवि है मान चलें
भारतमाता के चरणों में करने निज बलिदान चलें।

शास्त्री जी ने अपनी 'परिचय' शीर्षक कविता में शोषकों के अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज बुलन्द करते हुए अपने को उस अंगार के रूप में उपस्थित किया है जो विषमताओं को भस्म कर दे :–

शोषकों की नीति अब तो चल न सकती इस धरा पर
तोड़ शासक-शासितों का वर्ग, होंगे सब बराबर।

अब जनाजा उठ रहा है, दासता का इस जगह से
अन्याय अत्याचार की अर्थी सजी है सब तरह से
भस्म कर देगा इन्हें जो वह अनल अंगार हूँ मैं।

परिचयपरक एक अन्य चतुष्पदी में कवि ने अपनी गतिशीलता एवं कर्मठता को भिन्न भंगिमा में प्रस्तुत किया है :–

रुक गया मैं जिस जगह बस हो गया वह ठाँव मेरा
हार कर ही जीत पाता जो सदा वह दाँव मेरा
हूँ वही पंछी अकेला ही रहा जो झुंड में भी
क्या करोगे पूछ कर प्रिय ! नाम मेरा, गाँव मेरा।

शास्त्री जी के काव्य संभार में केवल चिंतन प्रधान आध्यात्मिक, ओजस्वी एवं सामयिक संदर्भों की रचनायें ही नहीं हैं, कुछ चुटीली, हास्य का सृजन करने वाली व्यंग्य प्रधान कविताएँ भी हैं। उनमें 'इम्तहान' की भयावहता से ग्रस्त छात्र की दयनीय दशा का हास्यपरक चित्रण है तो आधुनिकाओं एवं कालेज-बालाओं की फैशन-प्रियता पर कटाक्ष भी है। 'नेता' शीर्षक कविता का व्यंग्य स्पष्ट है :–

गैर के काम में लगा सकता हो अड़ंगा
बात-की-बात में करवा सकता हो दंगा
झूठ बोले, मगर ताव से कि सच जान पड़े
नेता वही जो फिसल गढ़े में कहे हर गंगा।

कवि को 'बुद्धिजीवी' शब्द पर तो आपत्ति है ही, बुद्धिजीवियों की अकर्मठता पर भी वह समय-समय पर प्रहार करता रहा है। पंक्ति है :–

बुद्धिजीवी और काम? राम-राम।

इसी मुद्रा में तथाकथित बुद्धिजीवियों पर कवि कटाक्ष करता है :

हर बात औरों की कन्ने से काटी
खाई सच-झूठ की तर्कों से पाटी
जीत ली दुनिया कॉफी के प्यालों पर
शुद्ध बुद्धिजीवी की, स्वस्थ परिपाटी।

शास्त्री जी स्वयं कर्मठ हैं और अनवरत कर्मरत रहने के विश्वासी हैं हैं। कर्महीन बहस के वे विरोधी हैं। उन्होंने लिखा है :–

कर्महीन बहस
शेषनाग के फण ज्यों सहस
फुफकारों में, नारों में
विष क्या कम है
क्यों न होगा पूँजीवाद तहस-नहस
बहस, केवल बहस !

उनकी कर्मठता इन चार पंक्तियों में भी ध्वनित हुई है :–

काम होता नहीं किया जाता है
हृदय मिलता नहीं लिया जाता है
किनारे बैठना तो साँस लेना है
बीच तरंगों के जिया जाता है।

विष्णुकान्त जी ने बहुत सी चतुष्पदियाँ भी लिखी हैं। कुछ बानगी देखिए :–

जिन्दगी विष ही रही मधु घोल दो तुम
हैं बचे दो चार पल हँस बोल लो तुम
विश्व से मिलती रही जिनको उपेक्षा
प्राण ! मेरे आँसुओं को तोल लो तुम।

या फिर –

मौन रहना चाहकर भी रह कहाँ पाया
और कहना चाहकर भी कह कहाँ पाया
दान पीड़ा का दया कर दे गये उसको
हाय सहना चाहकर भी सह कहाँ पाया ?

प्रीति के कोमल क्षणों की कविताएँ भी कम प्रभावी नहीं हैं :–

फूल सूखा पर अभी तक बास है
साँस के दिल में धड़कती आस है
तू भले ही दूर रह ले चाँद-सा
चाँदनी-सा प्यार तेरा पास है।

प्रिय की मधुर स्मृति कवि को प्रेरणा प्रदान करती है। उनकी सहज स्वीकृति है –

बात सच है क्यों करूँ इनकार
प्रेरणा देता किसी का प्यार।
जो बनाती धूल को भी फूल
पीर वह इन मुक्तकों की धार॥

विदा-वेला की पीड़ा कवि को उद्वेलित करती है :–

हो रहा तन ही विदा मन तो यहीं है
मन जहाँ हो, मनुज भी मानो वहीं है
भूलना तुमको स्वयं को भूलना है
प्यार में तो एक ही है, दो नहीं है।

स्मृति की एक दूसरी अभिव्यक्ति है :–

सूनी-सूनी शाम अकेला मन भटका-भटका
ऐसे में क्यों याद किसी की रह-रह आती है।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की ढेरों कविताओं का शास्त्री जी ने काव्यानुवाद किया है। जीवनानन्द दास की रचनाएँ भी उन्होंने हिन्दी में रूपांतरित की हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवियों की अनेक कवितायें भी शास्त्री जी के द्वारा अनूदित हुई हैं। अनुवाद के क्षेत्र में उन्हें सर्वाधिक कीर्ति प्राप्त हुई है बांगलादेश के मुक्ति-संग्राम के दौरान वहाँ के श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं के अनुवाद द्वारा। 'संकल्प-संत्रास-संकल्प' शीर्षक ग्रंथ में उन कवियों की बँगला की मूल रचना और शास्त्री जी का हिन्दी का अनुवाद प्रकाशित है। प्रस्तुत है 'कर्त्तव्य ग्रहण' शीर्षक रवीन्द्रनाथ की एक प्रमुख कविता का अनुवाद :–

सांध्य रवि बोला कि लेगा काम अब यह कौन ?
सुन निरुत्तर छविलिखित सा रह गया जग मौन।
मृत्तिका का दीप बोला तब झुकाकर माथ
शक्ति मुझमें है जहाँ तक, मैं करूँगा नाथ।

शास्त्री जी भक्ति-साहित्य विशेषकर तुलसी साहित्य के अधिकारी विद्वान माने जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास पर उन्होंने कई रचनाएँ लिखीं :–

ज्योति के अवतार, पुंजीभूत गरिमा
चेतना साकार, संयममय मधुरिमा।
विनय के आगार मर्यादा पुजारी
भक्ति के आधार तुलसी जय तुम्हारी।।

विनत भाव से भारतेंदु हरिश्चन्द्र के प्रति भी कवि ने श्रद्धांजलि अर्पित की है :

भारतेन्दु वह इंदु कि जिसको राहू ग्रस न सकेगा
भारतेन्दु वह इंदु सदा जो मुक्त कलंक रहेगा
भारतेन्दु वह इंदु कि जिससे झरता अमृत निरन्तर
भारतेन्दु वह इंदु सदा जो जन-जन को है सुखकर।

शास्त्री जी की बहुमुखी काव्य-सर्जना में भक्ति का भाव अंतर्वर्ती धारा के रूप में विद्यमान रहा है जो इधर के वर्षों में मुख्य धारा के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। भक्तिपरक रचनाओं में अपने आराध्य श्रीराम के प्रति उनका संपूर्ण समर्पण बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में व्यक्त हुआ है। द्रष्टव्य है एक दोहा :–

औरों के हैं जगत में स्वजन, बंधु, धन, धाम
मेरे तो हैं एक ही सीतापति श्रीराम।

तभी तो भक्ति के चारों आधारों (नाम, रूप, लीला, धाम) को अपनी प्रत्येक साँस में समेटते हुए अपने आराध्य की सेवा करते रहने के वे आग्रही हैं :–

साँस-साँस में रटूँ राम मैं नाम तुम्हारा
साँस-साँस में बुनूँ रूप मैं राम तुम्हारा
साँस-साँस में झलकाओ तुम अपनी लीला
साँस-साँस में रमो बने यह धाम तुम्हारा।

अपनी उपलब्धियों को 'रामजी की कृपा' और असफलताओं को 'रामजी की इच्छा' मानने वाले शास्त्री जी का अतिशय भक्तिभाव विनम्रता से परिपुष्ट होकर यों प्रकट हुआ है :–

तुम्हीं काम देते हो स्वामी तुम्हीं उन्हें पूरा करते हो
असफलता के दारुण क्षण में, अश्रु पोंछ पीड़ा हरते हो
कभी-कभी अचरज होता है, इतना अगुणी होने पर भी
कैसे, क्योंकर तुम मुझ पर यों कृपा-मेघ जैसे झरते हो।

विष्णुकान्त शास्त्री का मन कविता में चाहे जिन संस्कारों या अभ्यास से रमा हो लेकिन वे कविता को अपना सबसे अंतरंग-आत्मीय इसलिए स्वीकार करते हैं क्योंकि पीड़ा के, दुःख के क्षणों में वही सबसे निकट आकर खड़ी होती है और सांत्वना देती है :–

कविता केवल कभी-कभी मुझसे हँसती है
प्रायः गुमसुम सी रहती अवहेला करती।
पर चीर हृदय को आह निकलती है जब-जब
चुपचाप स्वयं आ मेरे दुख झेला करती।।

अपने साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक जीवन के गहन दायित्वों को प्रभु का प्रसाद मानकर कर्मरत रहना उनका स्वभाव है। वे अपनी एक रचना में कहते भी हैं :–

जो काम प्रभु ने दिया, नतमस्तक उसे लिया
जितना कर सका किया, इस तरह अबतक जिया
आगे भी इस प्रकार सहज झेलूँ गुरु भार
सबका स्नेह संभार, बने मेरा आधार।

शास्त्री जी की यही आस्था उनकी तेजस्विता और विनम्रता दोनों को पुष्ट करती है। ●

अनुक्रम

१. हो सचेतन राष्ट्र-जीवन	:	राष्ट्रीय कविताएँ	१७-२८
२. सर्जना आयाम - विविधा	:	विविध रंग की रचनाएँ	२९-४८
३. प्रेरणा देता किसी का प्यार	:	प्रेमपरक कविताएँ	४९-६२
४. राम तुम्हारे चरण प्रेरणा-स्रोत हमारे	:	भक्तिपरक कृतियाँ	६३-८२
५. गूँज यह अनुसर्जना की	:	अनूदित रचनाएँ	८३-१११

हो सचेतन राष्ट्र-जीवन

राष्ट्रीय कविताएँ

बढ़ सिपाही

विजय पथ पर बढ़ सिपाही
विजय है तेरी सुनिश्चित।

लोटती है विजय चरणों पर उन्हीं के, जो बढ़े हैं
तुच्छ कर सब आपदाएँ, धर्मपथ पर जो अड़े हैं।
विश्व झुकता है उन्हीं के सामने जो हैं झुकाते
बदल कर बिगड़ी परिस्थिति, हो अभय जय-गीत गाते॥
बढ़ सँभल कर, बन उन्हीं सा, प्राप्त कर तू फल अभीप्सित।
विजय है तेरी सुनिश्चित।

दे रहे आह्वान तुझको मत्त होकर मेघ काले
उठ रही झंझा प्रबलतम जोर इनका आजमा ले।
शपथ तुझको जो हटाया एक पग भी आज पीछे
प्राण में भर अटल साहस खेल ले, इनको खिला ले॥
नाश की पटभूमिका पर, सृष्टि का कर चित्र अंकित।
विजय है तेरी सुनिश्चित।

छोड़ देंगी मार्ग तेरा विघ्न बाधाएँ सहम कर
काल अभिनंदन करेगा आज तेरा समय सादर।
गगन गायेगा गरजकर गर्व से तेरी कहानी
वक्ष पर पदचिह्न लेगी धन्य हो धरती पुरानी॥
कर रहा तू गौरवोज्ज्वल त्यागमय इतिहास निर्मित।
विजय है तेरी सुनिश्चित।

●

लक्ष्य तेरा पास ही है

दृढ़ चरण धर तू बढ़ा चल लक्ष्य तेरा पास ही है।

साधना तेरी निरन्तर, परम पावन ज्योति बन कर
है प्रकाशित कर रही शत, कोटि भावुक तरुण अन्तर
जो स्वयं को भूल जीवन्मृत बने बिखरे पड़े थे,
वे सगौरव सिर उठाते आज तेरा तेज पाकर
आज उनके वक्ष में बल, नयन में उल्लास भी है
..... लक्ष्य तेरा पास ही है।

तू वही जिसने कि जग को, तीन पग में माप डाला,
पलक झपते ही न झपते, जलधि तक को लाँघ डाला
सहज गति तेरी, न रोके, रुक सकी थी विश्व भर से
अश्व-मख कर बार कितनी, अखिल जग को जीत डाला
तू वही होगा वही फिर सत्य यह विश्वास भी है।
..... लक्ष्य तेरा पास ही है।

क्या हुआ जो जिन्दगी की दौड़ में तू लड़खड़ाया
क्या हुआ जो विघ्नपर्वत आज तुझ पर टूट आया
विफलता के इन झकोरों में अटल रह अभय साधक
क्या हुआ जो श्याम घन ने, प्रखर रवि को है छिपाया
भूलता क्यों विफलता भी विजय का आभास ही है।
..... लक्ष्य तेरा पास ही है।

माँगती है कटु परिस्थिति और भी बलिदान तुझसे
माँगती है शक्ति, धीरज, संगठन की आन तुझसे
शपथ जो तू डगमगाया हो रही तेरी परीक्षा
है अपेक्षित सुदृढ़ साहसमय शहीदी शान तुझसे
विपद् बाधा ठेल बढ़ने का तुझे अभ्यास ही है
..... लक्ष्य तेरा पास ही है।

फिर उठेगी गूँज जग में तव जय-ध्वनि गगन-भेदी
फिर उड़ेगी तव पताका, कर अलंकृत विश्ववेदी
जग बनेगा आर्य फिर से, स्वप्न तेरे सत्य होंगे
भीत भव को अभय देता, गान होगा सामवेदी
विश्व के कल्याण का पथ, तव चरम विकास ही है।
..... लक्ष्य तेरा पास ही है।

●

अट्ठारह सौ सत्तावन के शहीदों के प्रति

जूझ काल से अमर हो गये जो बलिदानी
आजादी की नींव बनी जिनकी कुर्बानी।
उन्ही मस्त सिंहों की फौलादी हिम्मत को
शत प्रणाम करती भारत की नयी जवानी ।।

मायावी की मोह नींद के जादू से लड़
सत्तावन का शंख गूँजता रहा बराबर।
जाग सके उसके स्वर से ही तिलक, गोखले,
बापू, सावरकर, सुभाष, आजाद, जवाहर ।।

सदा प्रेरणा दे हमको यह स्वर अविनश्वर
माँ की पुकार पर हों सब के सब न्यौछावर।
ऊँचा उठता रहे जगत् में झण्डा अपना
विश्व गगन में प्रतिपल चमके भारत भास्कर ।।

*****

हम बड़े बन जाँय इसकी है नहीं इच्छा जरा भी,
किन्तु यह तै है कि तुमको हम बड़ा कर जायेंगे।

●●●

शरणार्थी

वह विषाद, उन्माद, खेद का करुण समन्वय
वह जड़ता, नैराश्य, दैन्य का मूक समुच्चय
भरी-भरी पीली आँखें, पर रीता अन्तर
रुक्ष केश, अति मलिन वेश रतशोक निरन्तर
वह मांसहीन, है अस्थिशेष सुख की स्मृति सम
मन आधि दीन, वपु व्याधि-क्षीण, ज्यों शीर्ण कुसुम
निरवलम्ब, स्वातंत्र्य-दम्भ पर प्रश्न चिह्न सा
उत्पीड़ित, असहाय, स्वगृह में आज भिन्न सा।

रही झूमती कल आँखों में यौवन-लाली,
रही चूमती कल प्राणों को प्रीति निराली
वह छोटा सा ग्राम पुरातन नदी किनारे
हरे-भरे वे खेत प्रकृति के परम दुलारे
पुरवैया के मधुर स्पर्श से धानी अंचल
बसुधा का लहराता जब, वह होता चंचल
स्वयंपूर्ण उसका अपना संसार स्वर्ग सा
मानो केन्द्रीभूत वहाँ पर प्यार सर्ग का।

फूटा ज्वालामुखी अचानक, क्रूर दनुजता
अट्टहास कर उठी, ध्वस्त थी त्रस्त मनुजता
बर्बर पाशव, हिंस्र शक्तियाँ, खेलीं खुलकर
हाय! कलंकित हुई धरा लोहू से धुलकर
लेलिहान वह अग्निशिखा थी कँपती नभ पर
आर्त्तनाद था अबलागण का नीचे भू पर
आबालवृद्ध प्रत्येक वहाँ पर बना वध्य था
होता था शैतान, कठिन नर-मेध-यज्ञ था।

छोड़ बड़ों की भूमि, तोड़ यौवन के सपने
जोड़ धैर्य, धर भग्न हृदय पर पत्थर अपने
पाकिस्तानी पशुओं को सर्वस्व सौंप कर
आया भारत केवल अपना धर्म बचा कर
भारत ! हाँ, हाँ, वही देश जो उनकी बलि दे
बना आज स्वाधीन अहिंसा की अंजलि से
जिसमें तीस करोड़ अभी भी बसते हिन्दू
आये उनकी शरण विताड़ित पीड़ित हिन्दू ।

सुनता हूँ "है परम धर्म शरणागत रक्षा
देकर निज बलिदान दे गये पूर्वज शिक्षा"
उनकी ही यह भूमि, उसी में ये शरणार्थी
बिलबिला रहे ये कीड़े से, आश्रय-प्रार्थी
भटक रहे हैं गली-गली में मारे-मारे
माँग रहे हैं दया-भीख ये हाथ पसारे
थे गुदड़ी के लाल, आज पर बिलख-बिलख कर
तोड़ रहे दम फुटपाथों पर सिसक-सिसक कर ।

पूछेगा इतिहास समझ लो दिल्ली वालो
क्लीव बने मुँह आज ढाँप कर सोने वालो
कर न सकेगी क्षमा तुम्हें पीढ़ी आगामी
मिट न सकेगा दाग नपुंसकता-अनुगामी
और हिन्दुओ ! नाम कलंकित करने वालो
मिथ्या गौरव, तुच्छ स्वार्थ पर मरने वालो
पाप जलायेगा तुमको यह धधक-धधक कर
मर रहा आज वह शरणार्थी जो सिसक-सिसक कर ।

●

केशव* का आत्ममंथन

सिर्फ बातों से भला कब बन सकी है बात?
शक्ति आवश्यक, यहाँ तो शक्ति का संघात।
सत्य तो यह, संगठन ही शक्ति का है उत्स
जो खड़ा हो प्रेम, निष्ठा, ध्येय पर अवदात॥

किन्तु ऐसा संगठन तो चाहता बलिदान
स्वप्न, चिन्तन, हृदय के कोमल, मधुर अरमान,
व्यक्तिगत सुख-लालसा या उच्च पद का गर्व
सब समर्पित यदि, तभी हो लक्ष्य का संधान॥

कौन धारण कर सकेगा व्रत कठिन असिधार
सुन सकेगा कौन बिखरा मौन हाहाकार?
युग-युगों की ग्लानि संचित धो सकेगा कौन
ला सकेगा कौन गंगा की अमृतमय धार?

आह, शत-शत प्रश्न, उत्तर किन्तु उनका एक
दूसरे आगे बढ़ें यह चाहना अविवेक।
क्यों बढ़े कोई तुम्हारी दृष्टि के अनुरूप
यदि स्वयं तुम ठान सकते हो नहीं वह टेक?

नींव का पत्थर बनूँगा यह सुदृढ़ संकल्प
ठन सके यदि, दूर क्षण में हों सभी विकल्प।
आत्मबलि ही सर्जना का मूलभूत रहस्य
वृक्ष तो है बीज का ही दिव्य कायाकल्प!!

* राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिष्ठाता डॉ. केशवराव बलीरामराव हेडगेवार

अब न दुविधा रोक सकती ये घुमड़ते भाव,
अब न आकर्षण जगत् का खेल सकता दाँव
नदी जैसे सिन्धु-संगम को उमड़ती दौड़
जग उठा वैसे हृदय में अब समर्पण-चाव ॥

साँस-साँस चुकाय मेरी, देश का राजस्व
है यही अब पंथ मेरा दीर्घ हो या ह्रस्व।
बन गयी सेवा नरों की राम सेवा आज
कुछ न मेरा, मैं न कुछ, अब संगठन सर्वस्व ॥

संगठन, जो कर सकेगा जाति का उद्धार
संगठन, जो शुद्ध सात्विक शक्ति का आगार।
जो सँजोये प्राण में शाश्वत, सरस हिन्दुत्व
चिर पुरातन धर्म का होगा नया श्रृंगार ॥

जो किसी को भी न भय दे, भय न जाने आप
हाँ, जिसे लख देश-द्रोही कँपे अपने आप।
शील-ज्ञान-चरित्र-बल जिसमें रहे भरपूर
जो सदा वरदान ही दे, झेल खुद अभिशाप ॥

राजसत्ता से न आकर्षित, न कम्पित, धीर
अभ्युदय के साथ निःश्रेयस् परम व्रत वीर
ले, करेगा राष्ट्र को जो परम वैभव-युक्त
जो मिटा देगा जननि-उर की युगों की पीर ॥

प्रभु, तुम्हारे पाद-पद्मों में झुका यह शीश
दो अजय साहस कि लाँघूँ विघ्न का वारीश।
देश के उत्कर्ष के हित जो सदा कटिबद्ध
गढ़ सकूँ वह संगठन, तुम दो मुझे आशीष ॥

●

दहकता प्रश्न

क्षमा मिलेगी नहीं कभी ओ दिल्लीवालो।
वोट-बैंक की राजनीति पर मरनेवालो॥
रामभक्त यदि मरे, राम की जन्मभूमि पर
देश करेगा भस्म तुम्हारा तख्त धधक कर।
अभी समय है, सावधान हो, बचो आग से
सुनो, दिशाएँ ध्वनित हो रहीं प्रलय-राग से।
जन-जन की इच्छा के तुम मत आड़े आओ
परम्परा की मर्यादा को शीश झुकाओ।
इसी सनातन से नूतन का उद्‌भव होगा,
राम राज्य इस पुण्य भूमि पर संभव होगा।
प्रस्तुत हैं हम सब बलिदानों को निस्संशय
सृष्टि, ध्वंस में कहो, तुम्हारा क्या है निर्णय ?

(राम जन्मभूमि आंदोलन के संदर्भ में रचित)

●

सर्जना आयाम - विविधा

विविध रंग की रचनाएँ

काम होता नहीं किया जाता है
हृदय मिलता नहीं लिया जाता है।
किनारे बैठना तो साँस लेना है
बीच तरंगों के जिया जाता है॥

●

दर्द साँप है दूध पिलाना छोड़ो
फटे चिथड़ों को सिलाना छोड़ो।
आँसुओं में मुस्कुराना सीखो
महज रोना औ' रुलाना छोड़ो॥

●

अखिल विश्व को जीत चुका जो
उसे हराती शंका मन की।
बन सकते हो राम स्वयं तुम
जीत सको यदि लंका मन की॥

●

मजा चलने का चलनेवालों से पूछो
रोशनी क्या है, जलनेवालों से पूछो।
न हल होंगे किताबों से प्रश्न जीवन के
इन्हें तूफान में पलनेवालों से पूछो॥

●

कविता केवल कभी-कभी मुझसे हँसती है,
प्रायः गुमसुम सी रहती, अवहेला करती।
पर वीर हृदय को आह निकलती है जब-जब
चुपचाप स्वयं आ मेरे दुख झेला करती॥

●

अन्धकार की ओर नहीं तुम चलो ज्योति की ओर
रहे गूँजती यह पावन ध्वनि जड़ता को झकझोर।
सबसे घना अँधेरा जग में यदि अज्ञान-अमा का
ज्ञान-सूर्य को लिये गर्भ में ग्रन्थालय है भोर॥

●

तुम्हें चोट पहुँचाकर मुझको कितनी चोट लगी है
यह कैसे बतलाऊँ वाणी अब तक रुँधी-रुँधी है।
जैसे मैंने अपने हाथों अपना दिल ही मसला
जैसे जीवन-ज्योति काँप कर स्वयं पड़ी धुँधली है।

●

तुम विकास के पथ पर बढ़ते रहो निरन्तर
तेजस्वी आनन हो श्रद्धा भीगा अन्तर।
सपनों का संसार तुम्हारा सच बन जाये
नयी ज्योति ले चाँद उतर आँगन में आये॥

●

मैं बहुत ऊँचा हूँ रहूँ अलग सब से
मन में पहाड़ के ये बात आयी जब से।
सूख गया रस, तन-मन बने पत्थर के
भूमि पर लदा है बोझ सा वह तब से॥

●

विज्ञापन पागल जनता को केवल बरक बाहरी दिखता,
भीतर गुड़ है या गोबर है, इसकी परख नहीं कर पाती।
चमकीला जो है, सोना वह नहीं हुआ करता है अकसर
बिना कसौटी चढ़े चमक तो प्रायः धोखा ही दे जाती॥

●

रुक गया मैं जिस जगह बस हो गया वह ठाँव मेरा
हार कर ही जीत पाता जो सदा वह दाँव मेरा।
हूँ वही पंछी अकेला ही रहा जो झुण्ड में भी
क्या करोगे पूछ कर प्रिय! नाम मेरा गाँव मेरा॥

●

यह गजब देखो कि सूरज दीप का मुहताज
भ्रमर निर्वासित, कमलवन मेढकों का राज।
देवता तो अंध कारागार में है बन्द
पुज रहा शैतान लेकिन पहन उसका साज॥

●

दुख रहा तन हाय! सिर से पाँव तक
दूर मुझसे आज मेरी छाँव तक।
किन्तु झुकना, लौटना, रुकना असंभव
हार मानूँगा न अंतिम दाँव तक।

●

सघन हरियाली नदी तट का खुला विस्तार
गुदगुदाती हवा, नभ का सिंधु से अभिसार।
उच्छ्वसित मन मुग्ध नेत्रों से सहज सौन्दर्य
पानकर, हो आत्म विस्मृत गया सब कुछ हार॥
(सूरीनाम में फेरी से कोपरनामा नदी को पार करते समय)

●

पीढ़ियों से जो बिछुड़कर आ बसे इस देश में
हम रहे पहचान उनको इस नये से वेष में।
हाँ, सतह पर दिख रहे अंतर, समय सक्रिय रहा
किन्तु मन अब भी रमा है, जानकी-अवधेश में॥
(सूरीनाम के भारतवंशियों के प्रति)

●

हरी-भरी धरती माता यह भुजा पसार बुलाये
पर शहरों की ओर देखते जन टकटकी लगाये।
यहाँ परिश्रम अधिक, वहाँ हैं सुविधाएँ कुछ ज्यादा
किन्तु यहाँ सब अपने लगते, लगते वहाँ पराये॥

●

होली

रस की गगरी छलके होली आयी
छैल छबीली चमके, होली आयी
ले प्रेमरंग निकली कान्हा की टोली
कसमस चोली मसके, होली आयी।

●

है अदा बाँकी निराली चाल है,
कुछ अनोखा सा अजब सा हाल है।
रंग होली का हवा को रँग गया
आज मुँह भी लाल मन भी लाल है॥

●

आज अपना रंग है कुछ और होली में
चल रहा है प्रेम-रस का दौर होली में।
तुम बने मनहूस कमरे में छिपे हो क्यों
आ मिलो दिल खोल कर दिलचोर होली में॥

●

आ गया है प्यार का मौसम – महीना होली का,
तुम खड़ी क्यों दूर हो गुमसुम – महीना होली का।
कह रहा मन तोड़ दो संयम – महीना होली का
अब मिलें दिल खोलकर हम तुम – महीना होली का॥

●

जो काम प्रभु ने दिया, नतमस्तक उसे लिया।
जितना कर सका किया, इस तरह अबतक जिया॥
आगे भी इस प्रकार, सहज झेलूँ गुरु भार।
सबका स्नेह संभार, बने मेरा आधार॥

(पश्चिम बंगाल विधान सभा के विधायक के रूप में निर्वाचित होने पर)

●

यह पराजय की घड़ी है
चोट सचमुच ही कड़ी है।
युद्ध पर जारी रहेगा
अस्मिता इससे बड़ी है।

(भाजपा को १९८५ के चुनाव में लोकसभा में सिर्फ २ आसन मिलने पर)

●

यह मिला जो स्नेह का मुझको कठिन वरदान।
बन सकूँ मैं योग्य इसके शक्ति दो भगवान॥

(१९८८ में भाजपा का राष्ट्रीय उपाध्यक्ष मनोनीत होने पर)

●

बात से बनती बिगड़ती बात है
बात से ही बन्धु! बाजी मात है।
बात गढ़ना है वृथा, खुल जायगी
बात देकर, रख चलो, क्या बात है!!

●

केवल बहस

कर्महीन बहस
शेषनाग के फण ज्यों सहस !
फुफकारों में, नारों में
विष क्या कम है,
क्यों न होगा पूँजीवाद
तहस-नहस ।
बहस, केवल बहस !

●

नेता

गैर के काम में लगा सकता हो अड़ंगा
बात की बात में करवा सकता हो दंगा ।
झूठ बोले, मगर ताव से कि सच जान पड़े
नेता वही, फिसल गढ़े में, कहे हर गंगा ।।

●

नये युग के वनमाली

माथे पर मनों बोझ
दिमाग खाली ।
घिस रहे कलम
दे रहे गाली !
नये युग के वनमाली ।

●

बुद्धिजीवी

हर बात औरों की कन्ने से काटी
खाई सच-झूठ की तर्कों से पाटी ।
जीत ली दुनिया कॉफी के प्यालों पर
शुद्ध बुद्धिजीवी की स्वस्थ परिपाटी ।।

●

बुद्धिजीवी और काम
राम राम !

●

प्राण चंचल हो उठे, काली घटा छायी,
यह हवा जाने कहाँ से झूम कर आयी।
स्निग्धता सी भर गयी वातावरण में,
दूब खिल सी उठी, कलिका मुस्करायी ॥

●

पोंछ देगा साज सब निर्मम समय का हाथ
और तो हैं और, छुटता साँस का भी साथ।
इसलिए क्या तुच्छ है, यह प्राण का आवेग
क्या न इसके ही सहारे मनुज उन्नत माथ?

●

भटक रहा, भटक रहा भटकूँगा जन्म भर
खोजूँगा, खोजूँगा, खोजूँगा सत्य पर।
बात कही, मानी, पुरानी पड़ गयी चाल,
जवानी का तकाजा है 'दो नया उत्तर' ॥

●

सपनों की दुनिया की बोलो क्या हस्ती है,
बसने के पहले जो उजड़ी क्या बस्ती है।
आज के जमाने में पैसा बड़ा महँगा है,
भावना हमारी, तुम्हारी बड़ी सस्ती है !!

●

तरस रहा युग-युग से प्यारे, अब न अधिक मुझको तरसाओ
ओ घनश्याम ! सहज करुणा की बूँदें मुझ पर भी बरसाओ।
हरा-भरा हो चुका स्नेह पा, झुलसे जग का कोना-कोना,
मेरे हृदय कमल की सूखी पाँखुरियों को भी सरसाओ ॥

●

बरसों बाद मिले हम फिर भी प्राणों में पहले सा स्पंदन,
तन की बगिया सूख चली सी, किन्तु खिला है मन का नंदन।
जग की जलती दुपहर में यह भेंट लगी शीतल छाया सी,
महकेगा रह-रह जीवन में इसकी स्मृति का सुरभित चंदन॥

●

मुझको आस्था दो तुम गहरी

अब तक तो चलता ही आया बनी बनायी राह पर
आधा जीवन बिता दिया औरों की नेक सलाह पर

सच है बहुत भला कहलाया
पुरस्कार बहुतों से पाया

पर क्या जीना यही जियो केवल औरों की वाह पर
सदा लगाओ खामोशी की मुहर हृदय की चाह पर

ओ मेरी आत्मा के प्रहरी
मुझको आस्था दो तुम गहरी

करूँ वही जो करना चाहूँ, अपने ही उत्साह पर
पीड़ा पीकर भी मुस्काऊँ, जग से मिलते दाह पर।

●

खंडित औचित्य

सफलता के चरम क्षण में
पराजय की ज्वलित अनुभूति।
यह सफलता हाय भीतर से
कहीं पर तोड़ देती है,
और यह दुखती पराजय
जो भले दे उम्र भर को
दाह की तीखी विरासत,
किन्तु फिर भी
आदमी को आदमी से
जोड़ देती है!

भाग्य का परिहास
सुखी होने की जगह
यह मन हुआ उदास!
अब उदासी से भरा आनन्द
जीवन को सरल रहने न देगा,
बात उमगेगी, मगर मन का
विभक्त, विरुद्धगामी बोध
सहज कहने न देगा।

और कह कर भी सदा पछतायगा
बिन कहे घुट जायगा,
क्योंकि कहना, नहीं कहना
पाना, न पाना
दोनों ही किया करते
औचित्य को खंडित!

●

आईने के सामने

तुम अब भी अच्छे लगते हो मेरे प्रतिबिम्ब।
तुममें अब भी बाकी है सहज सरल उत्साह
तुममें अब भी हिलोरती है जीवन की चाह
तुम अब भी हँस सकते हो खूब ठठाकर
तुम अब भी मुसका सकते चोट उठाकर
अब भी जीवन के प्रति विश्वास नहीं टूटा है,
भले लगे आघात सैकड़ों
मन का दरपन नहीं अभी फूटा है।
झाँक दूसरों की आँखों में
स्नेह जोड़ सकते हो
चाँदी की चमचमी ठनकती माया हो
या ईर्ष्या की अधसुलगी तिल-तिल दहने वाली आग
दोनों का फन्दा एक साँस में
झटक तोड़ सकते हो।

इसीलिए तो नेह हृदय का देकर यह कहता हूँ
तुम अब भी अच्छे लगते हो मेरे प्रतिबिम्ब।

सच है पक चला चेहरा
पड़ चलीं ललाट पर देखाएँ दो चार
असफल आकांक्षाओं का भार
किन्तु नहीं अवरोह।
हाँ, बीत गया कैशोर भावना का
स्वप्निल व्यामोह।
हँसी खींचती है अब भी
यद्यपि दिख जाता उसके भीतर का कलुषित द्रोह।

शब्दों का ताने पाल
युक्तियों, सिद्धान्तों की नौकाएँ
अब भी लगतीं तुम्हें पार पहुँचाने के साधन
नहीं सैर के लिए
लक्ष्य तक जाने को करते उनका आवाहन
ठगे जा चुके कितनी बार
फिर भी तुम्हें बाँध लेता है सपनों का मायाजाल।

तुम दुनियादारों की आँखों में मूरख
अपनों के लिए पराये
उनके काम न आये
ले ले नाम तुम्हारा जाने कितनों ने मुँह बिचकाये।
नहीं जानता क्या होगी परिणति,
इस दुनिया में सिरफिरे तुम्हारे जैसे
करवाते अपनी दुर्गति,
फिर भी उस दिन भी माथा ताने रहे अगर तुम
सच कहता हूँ नहीं करूँगा गिला
भीगे स्वर में सही
कहूँगा यही
तुम अब भी अच्छे लगते हो मेरे प्रतिविम्ब।

*****

एक दिल है हज़ार चिन्ताएँ
क्या करें हम, आप बतलायें।

श्रद्धांजलि

जब तक जग में हिन्दी, हिन्दू, कवि, कविता
तब तक गूँजेगी तेरी विमल कहानी।

जब तक नभ में रवि उग-उग कर ढल जाता
मुसका-मुसका कर निशि में शशि छिप जाता
जब तक सागर की लहरें उठ-उठ गिरतीं
जब तक मानव-मन में आशाएँ घिरतीं
जब तक गंगा-यमुना में बहता पानी
तब-तक गूँजेगी तेरी विमल कहानी।

है याद हमें उस युग की जब तुम आए
भारत-नभ पर काले बादल थे छाए
हिन्दू-संस्कृति की दीप-शिखा बुझती थी
चिर-संचित हिन्दू मर्यादा लुटती थी
उस विकट समय के कर्णधार! हे ज्ञानी!
गूँजेगी ही यह तेरी विमल कहानी।

तुमने अपनों को अपनापन सिखलाया
तुमने अपनों को अपना पथ दिखलाया
तुमने अपनों को रोका 'पर' होने से
असली मणि तजकर नकली मणि ढोने से
भारत के हे कवि, गुरु नेता लासानी
गूँजेगी ही यह तेरी विमल कहानी।

नित शैव वैष्णवों का झगड़ा बढ़ता था
हिन्दू मन पर तम का पर्दा पड़ता था
तुमने निज बल से 'मानस रवि' प्रकटाया
हो गई अमल हिन्दू समाज की काया
हम चिर-कृतज्ञ हे विनय-पत्रिका-दानी
गूँजेगी ही यह तेरी विमल कहानी।

युग-युग बीते जब आये थे तुम भू पर
युग-युग बीतेंगे जगत सुनेगा सादर
तव अमृतमयी वह वाणी ध्रुवतारा हो
चमकेगी, पथ दिखलायेगी सब जग को
हे परम तपस्वी! राम-भक्ति के ज्ञानी
अर्पित श्रद्धा की टूटी-फूटी वाणी।

जब तक जग में हिन्दी, हिन्दू, कवि, कविता
तब तक गूँजेगी तेरी विमल कहानी।

* * *

गोस्वामी तुलसीदास

थी पड़ी जातीय जीवनलता झुलसी
देख हुलसी का मनोहर लाल हुलसी।
है हरी वह आज तक जिसके सहारे
धन्य भक्ति-पियूषवर्षी-मेघ तुलसी॥

* * *

ज्योति के अवतार पुंजीभूत गरिमा,
चेतना साकार, संयममय मधुरिमा।
विनय के आगार, मर्यादा पुजारी
भक्ति के आधार, तुलसी, जय तुम्हारी॥ ●

भारतेन्दु

भारतेन्दु वह इन्दु कि जिसको, राहू ग्रस न सकेगा
भारतेन्दु वह इन्दु सदा जो मुक्त-कलंक रहेगा।
भारतेन्दु वह इन्दु कि जिससे झरता अमृत निरन्तर
भारतेन्दु वह इन्दु सदा जो जन-जन को है सुखकर ॥

दीना हीना माता को लख जिसकी वाणी फूटी
एक बार फिर हँसी कुमुदिनी युग-युग से थी रूठी।
आया ज्वार पुनः प्राणों में, जाड्य-श्रृंखला टूटी
चिर अभाव अभिशप्त रंक ने, भाव-संपदा लूटी ॥

जिसके तप से खिली चाँदनी, घोर अमावस्या में
जिसके स्वर से जगी देश की, बलिदानी आत्माएँ।
आज उसी की पुण्य-स्मृति में, उसके ही चरणों पर
विनत भाव से अर्पित करता, यह श्रद्धांजलि सादर ॥

●

लहरों का संगीत

लहरों का संगीत
समुद्री लहरों का संगीत
कल कल, छल छल, हर-हर, झर-झर
लहरों का संगीत
समुद्री लहरों का संगीत।

दूर देश से आनेवाली लहरें देख किनारा
बिसरा देती हैं निज सुध-बुध पा जीवन ध्रुवतारा।
यह उनकी आत्मा का स्वर है,
यह अन्तर की प्रीत।
लहरों का संगीत .....

प्राणों का आवेग नहीं सह सकता कोई बन्धन,
नृत्य-चपल, उल्लास मुखर होता उन्मादी यौवन
वह अर्पण की मधुबेला में
गा उठता है गीत
लहरों का संगीत .....

हाय, गीत की मादकता कितनी क्षणभंगुर होती,
सरगम की मधुगूँज न थमती लहर लहरपन खोती
साध न मिट पाती तब भी जब
मिलता मन का मीत
लहरों का संगीत .....

मिटती लहर किन्तु लहरों का क्रम कब है मिट पाता
यह उत्सर्ग अनोखा जिससे रुदन गान बन जाता,
इसको उनकी हार न कहना
यह तो उनकी जीत
लहरों का संगीत .....

●

जीवन कथा

यह जीवन की कथा
इसको तुम सुनो,
अनुभव करो,
कितनी गहरी यह व्यथा।
यह जीवन की कथा।

साध जितनी,
साधना उतनी कहाँ है।
खिंच चली आये स्वयं मंजिल
आराधना उतनी कहाँ है।
साध जितनी, साधना उतनी कहाँ है !!!

साध है,
जीवन कमल हँसता रहे भव कीच के ही बीच,
कर सकूँ मरुथल तलक को,
शस्य श्यामल, स्नेह जल से सींच।
प्रीति के बादल बरसते ही रहें,
लहलहाते धान खेतों की तरह
मानवों के मन सरसते ही रहें।

साध है,
मैं चीर फेकूँ, युग-युगों का यह घिनौना आवरण
जो मनुज की मनुजता का दम
शुरू से घोंटता आया,
कि जिसमें छिप दनुजता
सभ्यता का ढोंग रचकर
सींचती आयी विषमता के विषैले वृक्ष को।

साधना लेकिन नहीं इतनी
कि सपने आज ही हों पूर्ण,
जो मनुज की जिन्दगी को,
मौत से बदतर बनाते जा रहे हैं,
भावना को, स्नेह को, ईमान को
वस्तु विक्रय की बनाते जा रहे हैं,
कर सकूँ उनके इरादों का घरौंदा चूर्ण !!
किन्तु यह मेरी शपथ है, दम न लूँगा
जब तलक होती नहीं, अन्याय की अन्तिम पराजय,
जब तलक हँसता नहीं मानव नयन का स्वप्न
सत्य बन फूले कमल सा !!

●

प्रेरणा देता किसी का प्यार

प्रेमपरक कविताएँ

क्या सुनाऊँ पीर प्राणों की पुरानी
लग सकी कब हाय वह तुमको सुहानी
रह गया मैं आप अपने में न कुछ भी
बन गए हो खुद तुम्हीं मेरी कहानी

●

आज तुम कितने युगों के बाद आये
क्या न पल भर को निठुर ! हम याद आये।
दूर मन के मीत से, जलना पड़े यदि,
जिंदगी में तो भला क्या स्वाद आये॥

●

जिंदगी विष ही रही मधु घोल दो तुम
हैं बचे दो चार पल हँस-बोल लो तुम
विश्व से मिलती रही जिनको उपेक्षा
प्राण ! मेरे आँसुओं को तोल लो तुम॥

●

गीत मेरे कंठ से फिर फूटता है
चिर सुरक्षित गाँठ का धन छूटता है।
अब असह यह मौन पीड़ा मर्म-भेदी
आज मन का बाँध जैसे टूटता है।

●

कह गया मैं क्या नहीं मालूम मुझको
बह गया मैं क्या नहीं मालूम मुझको।
है यही मालूम तुम हो और मैं हूँ
रह गया फिर क्या नहीं मालूम मुझको॥

●

मौन रहना चाहकर भी रह कहाँ पाया
और कहना चाहकर भी कह कहाँ पाया।
दान पीड़ा का दया कर दे गये, उसको,
हाय ! सहना चाहकर भी सह कहाँ पाया !!

●

अपने दिल से पार पाना है नहीं आसान
मृदु हँसी का सार पाना है नहीं आसान।
है बहुत आसान अग-जग की घृणा पाना
पर किसी का प्यार पाना है नहीं आसान ॥

●

तुम बहुत अच्छे लगे पर क्या करूँ
यह बिछुड़ना ही मिलन-त्यौहार है।
फूल से हँस बोल, काँटों से छिदें
राहियों का तो यही अधिकार है ॥

●

चाँद की मुस्कान तो दिल लूटती ही है
किन्तु घूँघट की बदरिया छल गई मुझको।
था नशा, अब दर्द भी पलने लगा दिल में
प्यार की यह वंचना भी फल गई मुझको ॥

●

बात सच है क्यों करूँ इन्कार
प्रेरणा देता किसी का प्यार।
जो बनाती धूल को भी फूल,
पीर वह इन मुक्तकों की धार ॥

●

हो रहा तन ही बिदा मन तो यहीं है
मन जहाँ हो मनुज भी मानो वहीं है।
भूलना तुमको स्वयं को भूलना है,
प्यार में तो एक ही है, दो नहीं है॥

●

प्रिय, तुम्हारी याद आयी

प्रिय तुम्हारी याद आयी।
और वह मुझको यहाँ तक खींच लायी॥
किन्तु क्या मिलना सहज है?
जिन्दगी क्या पुष्परज है?
हाय वह काँटों पली है,
राम जाने, बार कितनी वह गयी जग से छली है।
एक संख्या और जुड़ ले
मोड़ यदि पाऊँ न मैं तो फिर वही खुद आप मुड़ ले।
मिल सका तो फिर मिलूँगा
और तब तक ऊसरों में ही खिलूँगा॥

●

तुम्हारी याद

रह रह याद तुम्हारी आती

शान्त, सरल भोला सा आनन
स्निग्ध, तरल जीवन सी चितवन
अधरों पर रस का मधु नर्त्तन
पुलक भरे उर की मृदु-धड़कन
देवि! तुम्हारी सुछवि सलोनी
आँखों के आगे छा जाती।
रह-रह याद तुम्हारी आती॥

मधु-भीनी वह रजत चंद्रिका,
प्यार भरी मादक विह्वलता
भूल जगत को, भूल स्वयं को
दो प्राणों की वह तन्मयता
देवि! हृदय को साल रही है
आज उसी की स्मृति मदमाती।
रह-रह याद तुम्हारी आती॥

चाँद आज भी उगता नभ में
केवल मुझको अधिक जलाने
पी-पी रटता निठुर पपीहा
मुझे अकेला जान सताने
देवि! देख इनको व्याकुल हो
कसक-कसक उठती है छाती।
रह-रह याद तुम्हारी आती॥

आज दूर तुमसे जगज्वाला
में जलते हैं तन-मन मेरे
दग्ध हृदय को शीतल कर दे
ऐसा कोई पास न मेरे
देवि! बुझ रही तिल-तिल करके
स्नेह-हीन यह जीवन बाती।
रह-रह याद तुम्हारी आती॥ ●

यह मेरा सौभाग्य कि तुम भी मेरे साथ चले

मैं तो अपने पथ पर सीधे बढ़ता जाता था,
मैं छोटा हूँ छोटों से ही मेरा नाता था।
यह न ज्ञात था, उतरा करता नभ से चंदा भी
मैं सन्तुष्ट उसी में था जो कुछ पा जाता था॥
अँधियारा जीवन था कितना रूखा-रूखा सा
यह मेरा सौभाग्य कि उसमें तुम बन दीप जले।
यह मेरा सौभाग्य कि तुम भी मेरे साथ चले॥

तुम्हें देखकर मैंने सुन्दरता को पहचाना
तुम्हें देखकर लगा कि जीवन तो है मुसकाना।
रहता था चुपचाप सिये इन अधरों को जैसे
तुम्हें देखकर लगा कि मुझको भी आता गाना॥
दिखी नहीं थी कभी गली सपनों की दुनिया की
यह मेरा सौभाग्य कि तुमको पा सपने मचले।
यह मेरा सौभाग्य कि तुम भी मेरे साथ चले॥

सच है मिलन रहा दो पल का, उससे क्या होता
पल भी काफी, ज्योतिस्पर्श से दीप जला होता।
मन की भारी शिला तले ही जो था रुद्ध पड़ा
फूट अचानक पड़ा वेग से मधुमय वह सोता॥
लुटा रहा मैं दोनों हाथों दान तुम्हारा ही,
यह मेरा सौभाग्य कि इतना मिला न जो सम्हले।
यह मेरा सौभाग्य कि तुम भी मेरे साथ चले॥

अब दुनिया कितनी बदली-बदली सी लगती है
एक नयी सी चमक लिये वह मन को ठगती है।
कसक यही, पहचाना तुमको, जब तुम छोड़ गये
तुम न सही पर याद तुम्हारी मन में जगती है॥
लगती है जिससे जन-जन की पीड़ा अपनी ही
यह मेरा सौभाग्य प्राण में ऐसी पीर पले।
यह मेरा सौभाग्य कि तुम भी मेरे साथ चले॥ ●

तुमको क्या जादू आता है ?

यह तुमने क्या किया कि सहसा
प्राणों में तूफान आ गया।
यह तुमने क्या दिया जिसे पा
गरल-सुधा मधु-दान पा गया॥
मेरा मन मुझको, दुनिया को
भूल-भूल जैसे जाता है
तुमको क्या जादू आता है ?

मेरा कण-कण, मेरा क्षण-क्षण
अब मेरा अपना न रहा प्रिय !
समा गये हो ज्यों तुम मुझमें
अब सपना, सपना न रहा प्रिय !
आँखों में आँसू भर आते
किन्तु हृदय बेसुध गाता है।
तुमको क्या जादू आता है ?

क्या पाया, क्या खोया मैंने
यह हिसाब मैं कर न सकूँगा।
मिट्टी के टुकड़ों की खातिर
तुम्हें तुला पर धर न सकूँगा।
जीतें जग के सफल हिसाबी,
मुझे हारना ही भाता है।
तुमको क्या जादू आता है ?

●

याद

सूनी सूनी शाम अकेला मन भटका-भटका
ऐसे में क्यों याद किसी की रह-रह आती है ?

नहीं, नहीं, मैं नहीं चाहता दिल को बहलाना
कमजोरी है दुखते अंगों को यों सहलाना।
जो अपना न रहा उसका तो जाना ही बेहतर
धुँधुआते रहने से तो बुझ जाना ही बेहतर॥
समझाता ही रहता हूँ, मन को मजबूत बनो,
पर होता सब व्यर्थ भेद यह आँख बताती है !

बीती घड़ियों को फिर जीने का हठ बचपन है
पर क्या करूँ, समझदारी से मन की अनबन है।
उसे नहीं विश्वास कि वे दिन सचमुच बीत गये
मधु से भरे सरोवर इतनी जल्दी रीत गये॥
लगता रहता, कोई बस अब आता ही होगा,
बहकी-बहकी नजर द्वार पर उठ-उठ जाती है।

सच कहते हो, खतरनाक है ऐसा सम्मोहन
भला काम क्या देगा दुनिया में यह पागलपन।
ठीक कह रहे, नहीं बना हूँ केवल घुटने को
मुझको भी कुछ करना होगा ऊपर उठने को॥
मानी तो सब बात किन्तु क्या होता है दिल में
घिरती आती रात तबीयत क्यों घबराती है ?

●

फूल सूखा पर अभी तक बास है
साँस के दिल में धड़कती आस है।
तू भले ही दूर रह ले चाँद सा
चाँदनी सा प्यार तेरा पास है॥

●

तुम्हें चाहने को मन चुप-चुप चाह रहा है
अपनी गहराई को जैसे थाह रहा है।
एक झिझक है, समा सकोगे क्या तुम इसमें,
समझ न पाता कुछ भी, किन्तु कराह रहा है॥

●

जा रहे तुम, क्या कहूँ, मुझको बताओ
दूर रहने में सुखी यदि, दुख न पाओ।
पीर यह मेरी तुम्हे संवेदना दे,
प्यार मेरा गति बने, यदि लड़खड़ाओ।

●

पीड़ा को साहस से तोल नहीं पाता हूँ
गाँठ कुछ पड़ी ऐसी खोल नहीं पाता हूँ।
दिल तो तरसता है कि बोझ जरा हल्का हो,
बात कुछ ऐसी है कि बोल नहीं पाता हूँ॥

●

आज अन्तिम बार आया मैं तुम्हारे पास
अलविदा के पूर्व कर लूँ तेज अपनी प्यास।
मुस्कराएँ हम कि धड़कन बन हृदय में प्राण,
आ समाये यह हमारा व्यथा भीगा हास॥

●

जाते-जाते ओ लजीली! दे गयीं मुस्कान,
गूँज सूने में उठी जैसे सुरीली तान।
चिर ऋणी था मैं तुम्हारा, बिक गया इस बार,
दे सकूँगा क्या भला इसका कभी प्रतिदान॥

●

आओ बैठो, करें बात, हँसें बोलें,
अपने में सिमटे से बन्द हृदय खोलें॥
अलग-अलग दोनों के बुझे बुझे मन हैं
फीकी-फीकी लौ में चटक रंग घोलें॥

●

तुम मिले अच्छा हुआ सूना सा लगता था
साथ-साथ चले, तो सच सपना सा ठगता था।
तुम गये अच्छा हुआ, खुद को पहचान सका,
जागा तो अब हूँ, तब सोता सा जगता था॥

●

चाँदनी

आज है कितनी नशीली चाँदनी।
मुक्त शशि का हास, जलनिधि की तरंगें,
गुदगुदी पगली हवा की, ये उमंगे।
दूर तक फैली हुई निस्तब्ध बेला,
और हम तुम, लग गया ज्यों एक मेला॥
आज है कितनी रसीली चाँदनी।

लग रहा हम तुम जनम जन्मान्तरों से,
फुल्ल कुसुमित, स्नेह सुरभित अन्तरों से
जिस समर्पण-साधना-पथ पर चले थे
विरह तम में स्वर्ण दीपक से जले थे।
सिद्धि सी उसकी सजीली चाँदनी।

●

हर आहट से लगा आये, तुम आये
रह गया बैठा किन्तु, आशा लगाये।
यही सही, तुम्हारी ही खुशी में खुश हूँ,
रुँधा गला लेकिन, कैसे गीत गाये॥

●

सिर्फ इतना ही.....

जा रहे हो आज, मन के मीत!
चार दिन की चाँदनी सचमुच गयी क्या बीत?
कौन, कब, बोलो, रुका है, सुन किसी की आह
दर्द ही देती सदा परदेसियों की चाह!

मैं न रोकूँगा तुम्हें, निर्भय रहो तुम!
गन्ध शीतल सहज उस दक्षिण पवन से,
पुलक जन-जन में भरो, पुलकित बहो तुम!
सिर्फ इतना ही कहूँगा, बन्धु
आभारी तुम्हारा, तप्त यह मरुथल।
कि जिसकी ओर करुणा से भरा झोंका,
न जाने क्यों बहा तुमने दिया,
कि जिसको दे गये मुसकान का सम्बल।
आभारी तुम्हारा, तप्त यह मरुथल॥

जानता हूँ भूल जाओगे मुझे तुम
पंथ के उन अनगिनत मित्रों सरीखे
कि जिनके साथ हम हँसते, उलझते, खेलते हैं
किन्तु जिनसे हृदय लेता है बिदा,
बिना पीड़ा, बिना कसके।
जानता हूँ भूल जाओगे मुझे तुम।

पर, तुम्हारी मधुर स्मृति का
जो विहँसता कमल इस मरु में खिला है
वह सदा अमलिन रहेगा।
चाहता हूँ, काश, तुम भी जान यह पाते!

●

आ गया है कौन .....

आ गया है कौन सहसा, इस तरह चुपचाप !
यह भटकता मन जिसे लख
पा गया आधार।
खोज युग-युग की सहज ही
हो गयी साकार ।।
मुसकुराने लग गये ये अधर अपने आप।
आ गया है कौन सहसा इस तरह चुपचाप ।।

सच समझ पाया न जिसका
एक भी व्यवहार।
सौंप पर फिर भी दिये उसको
सभी अधिकार ।।
मधुमयी इस विवशता ने हर लिये सब ताप।
भा गया है कौन सहसा इस तरह चुपचाप ।।

यह समर्पण कर न पाये
वह अगर स्वीकार।
औ चला जाये मुझे यदि
छोड़ कर मँझधार ।।
पार पहुँचूँगा उसी की मधुर स्मृति से आप।
छा गया है कौन सहसा इस तरह चुपचाप ।।

●

राम तुम्हारे चरण प्रेरणा स्रोत हमारे

भक्तिपरक कृतियाँ

राम-कृपा के बिना बने मन निर्मल कैसे
निज प्रयास तो घृत के हित जल-मंथन जैसे।
प्रतिक्षण चलती ही रहती मन की उधेड़बुन
दुष्ट मनोरथ करता रहता ऐसे-वैसे॥

●

रात दिवस मैं जूझ रहा अपने ही मन से
भोग लालसा प्रेरित इसके पागलपन से।
इसे नहीं यह ज्ञात कि यह तो भ्रांति सुखों की,
असली सुख तो मिलता निश्छल प्रभु-चिंतन से॥

●

यह कठिन आघात भी तेरी कृपा है,
मेघ, उल्का-पात भी तेरी कृपा है।
है यही विश्वास अनुभवजनित मेरा,
क्रूरतम संघात भी तेरी कृपा है॥

●

तू अमंगल वेष में मंगलमयी है,
क्रोध की तो भूमिका, करुणामयी है।
तू कराती तप, रुला उर द्रवित करती,
प्रभु-कृपा तू सच बड़ी क्रीड़ामयी है॥

●

मैं न दहलूँगा भयानक रूप लखकर,
भले उसको देख सबका मन दहल ले।
दृष्टि दी गुरु ने तुझे पहचानने की,
प्रभु-कृपा तू रूप चाहे जो बदल ले॥

●

साँस साँस में रटूँ राम मैं नाम तुम्हारा
साँस साँस में बुनूँ रूप मैं राम तुम्हारा
साँस साँस में झलकाओ तुम अपनी लीला
साँस साँस में रमो बने यह धाम तुम्हारा

●

औरों के हैं जगत् में स्वजन, बन्धु, धन, धाम।
मेरे तो हैं एक ही सीतापति श्रीराम॥

●

जीवन का पथ कितना दुर्गम, रह रह कर सिहरूँ,
हर ऊँची-नीची घाटी में, तुमको याद करूँ!
चूर-चूर तन, साँस धौंकनी, बढ़ता हूँ फिर भी
तुम मेरे रक्षक हो स्वामी, तब क्यों कहीं डरूँ!!

●

राम प्राण की गहराई से तुम्हें नमन है
कृपा पा सकूँ नाथ तुम्हारी, इतना मन है।
यह जग-ज्वाला क्या बिगाड़ सकती है मेरा
नाम तुम्हारा, सब तापों का सहज शमन है॥

●

छोड़ दो, सब राम पर ही छोड़ दो
जिन्दगी का रुख उधर ही मोड़ दो।
तुम जगत् के साथ भटके हो बहुत
अब स्वयं को जगत्पति से जोड़ दो॥

●

राम राम में रमो, रटो तुम राम-राम ही
राम राम ही जपो एक अवलम्ब नाम ही।
रूप चरित, गुण धाम उसी में सभी समाये
निहित बीज में ज्यों तरु, पत्ते, फल ललाम भी॥

●

मैं निस्साधन, दीन-हीन प्रभु, और न कोई मेरा,
एक गाँठ सौ फेरे वैसे मुझे भरोसा तेरा।
काल-व्याल मुँह बाये, जाने अगले पल क्या होगा,
अतः इसी पल अपने चरणों में दे मुझे बसेरा॥

●

मुझे नहीं कुछ आता स्वामी मैं मूरख अज्ञानी,
जग तो ठोंक बजा कर लेता तू तो औढरदानी।
निभा न मुझसे कोई साधन, हुई न मुझसे पूजा,
द्वार पड़े की लाज निभाना, तेरी रीति पुरानी॥

●

भटका जीवन के इस क्षण तक और न अब भटकाओ
व्याकुल हृदय शान्त हो जिससे वह उपाय बतलाओ
अंगारे को चंदन समझा, तप्त रेत को पानी
धोखा ही खाया है अबतक, प्रभु अब तो अपनाओ।

●

चलता रहा हूँ बिन रुके, फूला हुआ है दम
जलता रहा हूँ उम्र भर, इसका नहीं है गम।
मैंने सभी दुखों को सहज ही सहा मगर
बन्दा तेरा न पार हो, इसकी बड़ी शरम॥

●

जो तुम चाहो राम वही मैं दिल से चाहूँ,
जग से लूँ मुँह मोड़ तुम्हीं से प्रेम निबाहूँ।
मैं जंगल की घास सदृश किस गिनती में था
कृपा तुम्हारी मिली नाथ निज भाग्य सराहूँ॥

●

प्रभु तेरे पथ का मैं दुर्बल गिरता-पड़ता राही
मन में प्रीति, अश्रु नयनों में, मुख में नाम सदा ही।
मैं न पहुँच पाऊँ यदि तुझ तक तो आ तू ही मुझ तक,
मुझको संजीवन दे सकती तेरी कृपा-सुधा ही॥

●

तेरी इच्छा मेरी इच्छा बने, साधना मेरी
अपनी चाह विपद की जननी यह अनुभूति घनेरी।
जिसको फूल समझ कर चाहा वह तो काँटा निकला,
तूने यों खाली कर-कर के भर दी झोली मेरी॥

●

क्या रहस्य वह, जिससे जीवन-गुत्थी को सुलझाते
क्यों अपने सब यत्न इसे हैं और अधिक उलझाते?
तुमने तो अपने को अपने तक ही सीमित रक्खा
निज में सबको, सब में निजको, काश, कभी लख पाते॥

●

तब अपनी औकात समझ में आती हमको
जब लगता हाथों से सब कुछ गया-गया सा।
आँसू भीगी करुण प्रार्थना तब हम करते
मिलता जिससे जीवन हमको नया-नया सा॥

●

जो होना था हो चुका, जो होगा सो हो।
वर्त्तमान क्षण काम का, इसको तो मत खो।

●

राम तुम्हारा ध्यान, क्यों मैं कर पाता नहीं?
विषय-भोग, धन, मान, क्यों मुझको भटका रहे?

●

स्नेह दीप का जीवन जैसे मछली का जल
राम तुम्हारी कृपा हमारा जीवन-सम्बल।
शत-शत बाधा विघ्नों को अब अनायास ही
चीर खिलेगा भक्ति-साधना का यह शतदल॥

●

यह पड़ाव है मंजिल सचमुच बहुत दूर है प्यारे,
किन्तु यहाँ आ सके क्योंकि हम हिम्मत कभी न हारे।
राम कृपा का सुदृढ़ भरोसा और हौसला मन में
हो, यदि तो फिर दूर नहीं हैं आसमान के तारे॥

●

तूफानी गति से चलता है नूतन युग का जीवन
पल भर का विश्राम न पाता स्पर्धा-चिन्ता से मन।
भले लगें फेरों पर फेरे लंडन-वाशिंगटन के
रहना है यदि स्वस्थ न भूलो चित्रकूट-वृन्दावन॥

●

राम तुम्हारी कृपा लक्ष्य तक पहुँचाती है,
साधन वह, साधनहीनों का बन जाती है।
संकट की घड़ियों में अपने अमृत-स्पर्श से
आशंका-विष हरती, जीवन बरसाती है॥

●

विषय वासना के विष से इस जले हृदय को,
भक्ति-अमृत की वर्षा से तुम शीतल कर दो।
अन्य आश, विश्वास, भरोसों की जड़ता तज,
राम! तुम्ही में रमूँ निरन्तर मुझको वर दो॥

●

कितना आकर्षण इस जग में, मैं दुर्बल मति,
जाने कौन खींच ले मुझको इसका भय अति।
राम! तुम्हारे चरणों में यह विकल प्रार्थना
हाथ थाम लो मेरा, अपनी दो निर्मल रति॥

●

यह चमकीली दुनिया झूठी सिर्फ राख की ढेरी,
ऊपर भोगों का मधु दिखता भीतर बिपति घनेरी।
जो बीता, सो बीता, इसपर और न अब ललचूँगा
राम! तुम्हारे ही चरणों में हो रति-मति-गति मेरी॥

●

आज अमृत का स्पर्श मिला वह मेरे मन को
शीतल जिससे विषयों की ज्वाला हो आयी।
स्निग्ध शान्ति का अनुभव कितना पावनकारी,
शमित लालसा, तृष्णा अपने पर शरमायी॥

●

सौंप जब तुमको दिया इस जिन्दगी का भार रघुबर,
तब मुझे क्या सोचना है, जीत हो या हार रघुबर।
सिर्फ इतनी शक्ति मुझको दो कि मैं अन्तःकरण से
कर सकूँ स्वीकार सब कुछ, जो तुम्हें स्वीकार रघुबर॥

●

सृष्टि लगेगी राममयी तब दृष्टि राममय जब हो जाये,
अपने, अपनों के घेरे से निकल, सभी में रस-बस जाये।
कण-कण में प्रभु रमा हुआ है बात तभी यह समझ सकेंगे
उसके सिवा न कुछ भी अपना जब इस जीवन में रह जाये॥

●

सुख की भ्रान्ति, दुःख के आँसू अनभोगी शत-शत इच्छाएँ
प्रियता-अप्रियता के बन्धन, क्षण-क्षण अनचाही विपदाएँ।
क्षुद्र अहं का उग्र प्रदर्शन, ममता की दयनीय हताशा
भोग लालसामय जीवन की पीड़ा-लांछित ये सीमाएँ॥

●

बुद्धि तुम्हारी करुणा की कुछ थाह न पाती
बात बिगड़ती बिगड़-बिगड़ कर बन-बन जाती।
जीवन यात्रा के अनुभव हैं अद्‌भुत सचमुच
दूब शिला पर उगती, ज्वाला जल बन जाती॥

●

लगा अचानक धरती पैरों तले नहीं है
निस्सहाय सा अन्धकूप में गिरा जा रहा।
तभी न जाने कैसे, किसका मिला सहारा
दिखा सिन्धु उत्ताल किन्तु मैं तिरा जा रहा॥

●

थका-थका सा चला जा रहा था निज साहस तोल
लगता था अब गिरा, तब गिरा, मन जाता था डोल।
कितना दुर्गम अँधियारा पथ, काँटों भरा अछोर
कहाँ यहाँ मिल गये बन्धु तुम दिया सँजीवन घोल॥

●

हम तुम्हारी बाट जोहा कर रहे कब से न जाने
नयन पथराये, पलक निश्चल मगर हठ हृदय ठाने।
झलक स्वाती बूँद सी या चिर तृषातुर प्राण झुलसे
तुम्हीं कह दो, कौन सी अपनी नियति हम आज मानें॥

●

कैसा बन्धन है यह, जिसको खोल नहीं हम पाते !
रहा खोलना दूर, उसी में और उलझते जाते !
इच्छा होती झटक तोड़ दें, अब क्या रक्खा बाकी
किन्तु तोड़ने का साहस भी कहाँ जुटा हम पाते ।।

●

मरुस्थली में कृपा सजल हरियाली बनती
प्रखर वृष्टि में माथे पर छाते सी तनती।
सघन अँधेरे में छिपता जीवन का पथ जब
चीर बदलियों को किरणों सी तब वह छनती ।।

●

मैं अबोध अभिमानी भूलें करता ही जाता हूँ,
कभी-कभी अपने को अपने ही विरुद्ध पाता हूँ।
चूर-चूर हो गया अहं इस गोरखधंधे में पड़
अतः राम के गुण समूह अब हो विनम्र गाता हूँ ।।

●

शुभाशीष दो, करूँ राम मैं केवल काम तुम्हारा
अहंकार हर लो, हो सम्बल केवल नाम तुम्हारा !
जग के नाना रूपों में मैं देखूँ नाथ तुम्हें ही,
अखिल विश्व को समझ सकूँ मैं केवल धाम तुम्हारा !!

●

असहनीय हो उठा जगत् का अब यह कौआरोर
केवल दाँव-पेंच, तिकड़म से भरा क्षुद्र यह शोर!
इस से तो बढ़ता जाता है राग-द्वेष घनघोर
राम कृपा कर मुझको अब तुम खींचो अपनी ओर!!

●

मृत्यु तुम्हारा मुझको क्या भय, जब आना हो आओ,
जर्जर वस्त्र बदल कर मुझको नया वस्त्र पहनाओ।
झेल चुका ये नाते-रिश्ते सुख-दुख की छलनाएँ
राम-मिलन संभव हो जिस में ऐसा जन्म दिलाओ॥

●

तुम्हीं काम देते हो स्वामी, तुम्हीं उन्हे पूरा करते हो,
असफलता के दारुण क्षण में, अश्रु पोंछ पीड़ा हरते हो।
कभी-कभी अचरज होता है, इतना अगुणी होने पर भी
कैसे, क्यों कर तुम मुझ पर यों कृपा-मेघ जैसे झरते हो !!

●

तेरी तो क्रीड़ा ही होती कठिन परीक्षा मेरी
इतनी अद्भुत रचना तेरी विफल समीक्षा मेरी।
फिर भी नोंक-झोंक मैं तुझसे करता ही जाऊँगा
तुझसे जुड़ कर ही रहने की निश्चल दीक्षा मेरी॥

●

कब मेरा चाहा हुआ कि मैं अब कुछ चाहूँ
दग्ध हृदय को तुम्हीं कहो क्यों फिर-फिर दाहूँ!
जो चाहो तुम करो तुम्हारा किया सभी कुछ
सिर माथे पर, भले कराहूँ या कि सराहूँ!!

●

बदला-बदला सा लगता है जीवन का क्रम
बिसर गया सा लगता अपना मदमय उपक्रम।
लगता भ्रान्तिविलास सदृश सब करतब अपना
किसी हाथ के एक खिलौने का क्या विक्रम॥

●

तुम कहते, मैं नहीं देह यह, मैं आत्मा अविनश्वर
कहा तुम्हारा सच ही होगा, पर मेरा मन कातर!
पिंजर-बद्ध कीर यह कब का मुक्त गगन को भूला
बिना तुम्हारी कृपा बताओ उड़ पाये यह क्यों कर!!

●

आह, जमने की प्रवेष्टा में सदा उखड़ा किया मैं
अब न उखड़ूँ इसलिए मैं चाहता हूँ जमूँ तुम में।
रम न पाया विश्व के इन खोखले आकर्षणों में
रम्यता की परा सीमा राम अब मैं रमूँ तुम में॥

●

कैसी-कैसी भूलें की पर अहं मान कब पाता,
उन्हें सही साबित करने को हठवादी बन जाता !
लगता अहंकार मेरा ही ले डूबेगा मुझको
काश, जरा पहले रहस्य यह मुझे समझ में आता !!

●

राम तुम्हीं ने फिर संकट से आज उबारा,
मै तो अपनी बाजी सीधे सीधे हारा।
किन्तु तुम्हारी कृपा हार को जीत बनाती,
जो आया बन राहु बन गया वह ध्रुवतारा ॥

●

मरघट में ही शान्ति, स्वप्न में ही सुख बसता
जो हँसता आता वह जाते-जाते डँसता।
सिर्फ मूर्खता ही है जग से आस लगाना
हरकर पीर, प्रीति देना तो प्रभु को लसता ॥

●

बाल सादे हो गये प्यारे तुम्हारे,
पर न मन सादा हुआ इसलिए हारे।
अब चलो उसकी शरण जिसकी कृपा ने
अनगिनत काले हृदयवाले उबारे ॥

●

लगा हुआ बाजार सामने चकमक करता
ललच-ललच कर यह मन केवल छटपट करता।
भटका करता सिर्फ कामना के जंगल में
आह! कभी तो शान्त भाव से राम सुमरता॥

●

ऐसा भी दिन हो जीवन में प्रभु का ध्यान धरे,
राम नाम जप माया-संभव सब अभिमान हरे।
छूटें जग के सब आकर्षण, टूटें सब बन्धन
मन मधुकर प्रभु चरणकमल का अमृत पान करे॥

●

यह तन तुमने दिया राम! सेवा करने को
भजन तुम्हारा भक्तिभाव से कर तरने को।
कुछ न हो सका, खींच ले गयी प्रबल वासना
कातर मन कर रहा विनय पीड़ा हरने को॥

●

जाने किस-किस रूप में, तुम आते हो नाथ।
देते मन को आसरा, सदा निभाते साथ॥

●

तरी अहल्या जिनके पावन मृदुल स्पर्श से
प्रेम-हठीले केवट से जो गये पखारे !
जो जग का दुख हरने काँटों से क्षत-विक्षत
राम ! तुम्हारे चरण प्रेरणा स्त्रोत हमारे !!

●

मुझे शक्ति दो नाथ ! कर सकूँ निज पर संयम,
काम, क्रोध को जीत सकूँ धारण कर शम-दम।
जगजीवन के मायामय आकर्षण से बच,
तुम्हें समर्पित हो पाऊँ बन निरहं, निर्मम ॥

●

थोड़े सुख से सुखी, दुःख से दुखी हुआ करता है यह मन,
कैसी खोटी आदत इसकी विषयातुर रहता यह प्रतिक्षण
ठगा जा चुका बार अनेकों फिर भी सम्हल न पाता है यह
केवल कृपा तुम्हारी राघव ! कर सकती है इसका शोधन ॥

●

अब तक का जीवन तो बीता स्वार्थपूर्ण व्यवहार में
जिनका मुख देखे दुख उपजे उनकी ही मनुहार में
कहता कुछ था, करता कुछ था, रखता अपने मन कुछ और
राम तुम्हें अब याद कर रहा पड़ा हुआ मँझधार में ॥

●

कोई अपना दूर चला जब जाता
मन पीड़ा से कातर हो मुरझाता।
सिवा राम के कौन सान्त्वना उसको,
दे सकता है, नहीं समझ मैं पाता॥

●

ध्येयनिष्ठ हो अगर समर्पण, विनयपूर्ण हो प्रतिपद,
सहज साधनामय जीवन हो, राम कृपा हो सम्पद।
मेवा खाने की न लालसा हो यदि अपने मन में
सेवा का छोटा सा पौधा बन सकता है बरगद॥

●

बड़ा काम कैसे होता है? पूछा मेरे मन ने,
बड़ा लक्ष्य हो, बड़ी तपस्या, बड़ा हृदय, मृदुवाणी!
किन्तु अहं छोटा हो जिससे सहज मिलें सहयोगी
दोष हमारा, श्रेय राम का हो प्रवृत्ति कल्याणी!!

●

जटिल जाल में फँसे हुए, असहाय सरीखे,
रोये छटपट-छटपट कर, चिल्लाये, चीखे।
झेल-झेल कर कठिन वेदना, तन, मन जर्जर
प्रभु! ऐसे में एकमात्र आश्रय तुम दीखे॥

●

मैं, मेरा, मैं, मेरा, रटते-रटते जीवन बीता
अन्तर-घट रह गया अतः प्रभु रीता का ही रीता।
लगता है अब शेष रह गयीं, गिनती की ही घड़ियाँ
मोह काट, चरणों में आश्रय दो, तो हो मनचीता॥

●

दुख की बदली, सुख का चन्दा, जीवन की सच्चाई दोनों,
दुख-सुख में यदि सम रह पायें, तो देंगे गहराई दोनों।
दुर्बल मन पर थोड़े में ही घबराया, इठलाया करता
समझ न पाता प्रभु की भेजी सचमुच हैं अच्छाई दोनों॥

●

बहुत कठिन है राम जगत् में राह तुम्हारी चलना,
कहना सुगम, निभाना दुर्गम, कैसी-कैसी छलना।
अनजाने ही अहं ग्रास कर लेता मेरे मन को,
काम-क्रोध की कठिन आग में निशिदिन होता जलना॥

●

होना पड़ा उसे लज्जित ही जिस ने दुनिया चाही,
दुनिया भला हुई कब किसकी, उसकी चाह तबाही।
ठोकर खा-खा सीख चुका यह, इसीलिए तो स्वामी!
और न कुछ भी चाहा, केवल कृपा दृष्टि ही चाही॥

●

लगता जितना अधिक, हकीकत में उतना ही कम हूँ,
अन्तर से तो घोर अमावस वाणी से पूनम हूँ।
तुमको तो सब ज्ञात राम क्या जाँघ उघारूँ अपनी
बाहर बानक संत सरीखा भीतर महा अधम हूँ॥

●

जो होना होता है यों तो होकर ही वह रहता
फिर भी कुछ बदला जा सकता मन रह रह यह कहता।
होनी अनहोनी का अन्तर पल भर में मिटता जब
श्रद्धा से तेरे चरणों का आश्रय कोई गहता॥

●

राम महापुरुषों की निश्छल वाणी कहती
अखिल विश्व की सुन्दरता में रूप तुम्हारा।
किन्तु भक्ति की जगह जागती भोगवासना
क्योंकि काम से कलुषित मन. का कूप हमारा॥

●

भूलें करते जीवन बीता अन्त समय नियराया
समझ न आता कुछ भी मुझको क्या-क्या हाय गँवाया!
बचा-खुचा सब अर्पित तुमको, अब संकल्प तुम्हारा
प्रेरक तुम, प्रेरित कर्त्ता मैं, तो सब कुछ भर पाया॥

●

गूँज यह अनुसर्जना की

अनूदित रचनाएँ

सर्वं जिह्मं मृत्युपदं आर्जवं ब्रह्मणः पदम्।
एतवान् ज्ञान विषयः किं प्रलापः करिष्यति ॥

महाभारत आश्वमेधिक पर्व ११/४

जो भी कुटिल मृत्यु का वह पद
जो ऋजु उसे ब्रह्मपद जानो।
यही ज्ञान का विषय मुख्यतः
कर प्रलाप कुतर्क मत ठानो ॥

●

चरैवेति

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम ।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा ॥ चरैवेति ॥

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः ।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति ॥२॥

आसते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति ॥३॥

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति ॥ ४॥

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति ॥५॥

ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३

चलते रहो, रहो चलते ही

कठिन परिश्रम बिना कहाँ श्री, रोहित यह सुनते आये हम।
घर से बँधा श्रेष्ठ भी । . ।।, पथिक-सखा प्रभु को प्रिय पथ-श्रम ।।
चलते रहो, रहो चलते ही ।।

फूल पथिक की जाँघ जाँघ तक, वह वर्धिष्णु सदा फल-ग्राही।
चलने के सब पाप परिश्रम-हत हों पथ में बिछें सदा ही ।।
चलते रहो, रहो चलते ही ।।

बैठ गयों का भाग्य बैठता खड़ा खड़े होने वालों का।
सोता सोने वालों का ज्यों चलता है चलने वालों का ।।
चलते रहो, रहो चलते ही ।।

सोनेवाला कलियुग में है, करवट लेता जो, द्वापर में
खड़ा हो गया वह त्रेता में, चलनेवाला तो सतयुग में ।।
चलते रहो, रहो चलते ही ।।

चलनेवालों को मधु मिलता, मिलता सुस्वादु उदुम्बर भी।
सूरज की श्रम-शोभा देखो, थमता कभी न जो क्षण भर भी ।।
चलते रहो, रहो चलते ही ।।

●

अथ वरदवल्लभा स्तोत्रम्

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः शय्यासनं वाहनं
वेदात्मा विहगेश्वरो यवनिका माया जगन्मोहिनी ।
ब्रह्मेशादिसुरव्रजस्सदयितस्त्वद्दासदासीगणः
श्रीरित्येव च नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम् ॥१॥

यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोऽपि प्रभु–
र्नाऽलं मातुमियत्तया निरवधिं नित्याऽनुकूलं स्वतः ।
तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च स्तोष्यामहं निर्भयो,
लोकैकेश्वरि लोकनाथदयिते दान्ते दयां ते विदन् ॥२॥

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणाद्रक्ष्यते,
नष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं सम्प्रत्यनन्तोदयम् ।
श्रेयो न ह्यरविन्दलोचनमनः कान्ताप्रसादादृते,
संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां संभाव्यते कर्हिचित् ॥३॥

शान्ताऽनन्तमहाविभूतिपरमं यद्ब्रह्मरूपं हरे –
र्मूर्तं ब्रह्म ततोऽपि तत्प्रियतरं रूपं यदत्यद्भुतम् ।
यान्यन्यानि यथासुखं विहरतो रुपाणि सर्वाणि ता –
न्याहुः स्वैरनुरूपरूपविभवैर्गाढोपगूढानि ते ॥४॥

आकारत्रयसम्पन्नामरविन्दनिवासिनीम् ।
अशेषजगदीशित्रीं वन्दे वरदवल्लभाम् ॥५॥

रचयिता – यामुनाचार्य

वरदवल्लभा स्तोत्र

पुरुषोत्तम हैं कान्त, शेष है शैया, आसन-वाहन
वेदात्मा विहगेश्वर, पर्दा जगत-मोहिनी माया।
ब्रह्मा-शिव-सुरगण-पत्नीसह, दासी-दास तुम्हारे
भगवति ! श्री है नाम, करूँ मैं कैसे स्तुति-परिचर्या ॥१॥

स्वयं तुम्हारे वल्लभ प्रभु भी अपनी सदृश तुम्हारी
अनुकूल, नित्य, निरवधि महिमा की थाह नहीं पाते।
लोकनाथदयिते ! लोकेश्वरि ! दया तुम्हारी पाकर
स्तुति तव करता सेवक निर्भय शरणागत के नाते ॥२॥

ईषत् कृपा दृष्टि तव पा जग अमृत-सिंचा सा सम्प्रति
उदित अनन्त सुरक्षित, पहले नष्ट पड़ा था उस बिन।
कमलनयन-कान्ता-प्रसाद बिन संसृति-अक्षर-वैष्णव-
पथ पर कोई श्रेय पा सके संभव नहीं किसी दिन ॥३॥

हरि का रूप अनन्त, ब्रह्म, पर, शान्त, विभूतिमहायुत
मूर्त्त ब्रह्म उससे भी प्रियतर अतिशय, अद्भुत शोभन।
और और जो रूप यथासुख धर वे विहरण करते
उन सब से सम्बद्ध सुदृढ़ तुम धर अनुरूप विभव तन ॥४॥

सदा कमल में रहती हैं जो तीन रूप कर धारण।
वरदवल्लभा, जगत स्वामिनी का मैं करता वन्दन ॥५॥

●

प्रश्न

भगवान, तुमि जुगे जुगे दूत पाठायेछो बारे बारे
दयाहीन संसारे –
तारा बले गेलो 'क्षमा करो सबे', बले गेलो भालोबासो –
अन्तर हते विद्वेष बिष नाशो' ।

वरणीय तारा, स्मरणीय तारा, तबुओ बाहिर-द्वारे
आजि दुर्दिने फिरानू तादेर व्यर्थ नमस्कारे ।।
आमि जे देखेछि, गोपन हिंसा कपट रात्रि-छाये
हेनेछे नि:सहाये ।

आमि जे देखेछि, प्रतिकारहीन शक्तिर अपराधे
बिचारेर बानी नीरवे निभृते काँदे ।
आमि जे देखिनू, तरुन बालक उन्माद हये छूटे
की यन्त्रणाय मरेछे पाथरे निष्फल माथा कूटे ।।

कण्ठ आमार रुद्ध आजिके, बाँशी संगीतहारा,
अमावस्यार कारा
लुप्त करेछे आमार भुवन दु:स्वपनेर तले;
ताइ तो तोमाय शुधाइ अश्रुजले –
जाहारा तोमार विषाइछे वायु, निभाइछे तव आलो,
तुमि कि तादेर क्षमा करियाछो, तुमि कि बेसेछो भालो ?

मूल : रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रश्न

भगवन्, युग युग में तुमने भेजे हैं दूत बार-बार,
ताकि सुधरे यह दयाहीन संसार !
कहा उन्होनेः `करो सभी को क्षमा, करो सभी को प्यार
जहर द्वेष का दिल से दो निरवार ।`

वरण योग्य थे, स्मरण योग्य वे, फिर भी इस दुर्दिन में,
बिदा कर दिया उन्हें द्वार से, सूखा एक नमन दे ।
देख रहा मैं, गोपन हिंसा कपट रात्रि में
दुर्बल पर कर वार रही है ।

देख रहा मैं, शक्तिमान के अपराधों पर
प्रतीकार-असमर्थ न्याय की वाणी
निर्जन में नीरव आँसू ढार रही है !

देख रहा मैं, तरुणाई पागल सी होकर
पत्थर से सिर टकरा-टकरा
विफल-यंत्रणा से खुद को ही मार रही है ।

रुद्ध-कंठ, संगीत-रहित है आज बाँसुरी
अमा निशा की कारा के इन दुःस्वप्नों में
मेरा सारा भुवन खो गया ।

आह, तभी तो
मैं आँखों में आँसू भर कर, पूछ रहा तुमसे हे प्रभुवर,
कर रहे विषैली वायु, बुझा जो ज्योति तुम्हारी
तुमने उनको क्या क्षमा किया है ?
उनको भी क्या प्यार दिया है ?

●

अद्‌भुत अंधकार

अद्‌भुत आँधार एक एसेछे ए पृथिवी ते आज
जारा अन्ध सब चेये बेशी आज चोखे देखे तारा
जादेर हृदये कोनो प्रेम नेइ, प्रीति नेइ, करुणार आलोड़न नेइ
पृथिवी अचल आज तादेर सुपरामर्श छाड़ा।
जादेर गभीर आस्था आछे आजो मानुषेर प्रति
एखनो जादेर काछे स्वाभाविक बले मने हय
महत् सत्य वा रीति, किंवा शिल्प अथवा साधना
शकुन ओ शेयालेर खाद्य आज तादेर हृदय।

— *जीवनानन्द दास*

अद्‌भुत अंधकार उतरा है धरती पर आज
जो सबसे ज्यादा अन्धे हैं, आज देखते वे ही!
जिनके उर में प्रेम नहीं है, प्यार नहीं है, करुणा का भी लेश नहीं है
पत्ता तक न आज हिल सकता, बिना उन्हीं की शुभ सम्मति के!
है आस्था गंभीर मनुज के प्रति अब भी जिनकी
महत् सत्य या शिल्प, साधना अथवा पद्धति
अब भी जिनको स्वाभाविक लगती है; उनका
हृदय खाद्य है आज गीदड़ों औ गीधों का।

●

मोह

नदीर ए पार कहे छाड़िया निःश्वास
ओ पारे ते सर्व सुख आमार विश्वास
नदीर ओ पार बसि दीर्घ श्वास छाड़े –
कहे याहा किछू सुख सकलि ओ पारे ॥ – *रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

नदी का यह पार बोला छोड़ कर निःश्वास –
सुख सभी उस पार, मेरा है यही विश्वास ।
नदी का वह पार बोला, साँस लंबी छोड़
हाय ! सुख जितने सभी तो रह गये उस ओर ॥

●

कर्त्तव्य ग्रहण

के लइबे कार्य मोर कहे सन्ध्या रबि
शुनिया जगत् रहे निरुत्तर छबि
माटीर प्रदीप छिल, से कहिल स्वामी
आमार ये टुकु साध्य करिब ता आमी । – *रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

सांध्य रवि बोला कि लेगा काम अब यह कौन
सुन निरुत्तर छवि लिखित सा रह गया जग मौन ।
मृत्तिका का दीप बोला तब झुका कर माथ
शक्ति मुझमें है जहाँ तक, मैं करूँगा नाथ ॥

●

आरंभ और शेष

शेष कहे एक दिन सब शेष हबे
हे आरंभ, वृथा तव अहंकार तबे
आरंभ कहिल, भाई जेथा शेष हय
सेइ खाने पुनराय आरंभ, उदय

– *रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

शेष बोला एक दिन होगा सभी कुछ शेष
दंभ तेरा है वृथा अतएव हे आरंभ।
कह उठा आरंभ, होता है जहाँ पर शेष
उस जगह से ही हुआ करता पुनः आरंभ॥

●

शैवाल दीघीरे कहे उच्चकरि शिर।
लिखे देखो एक फोंटा दिलेम शिशिर॥

– *रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

बोला माथा तान झील से गर्वीला सेंवार।
लिख रक्खो दी एक बूँद यह ओस तुम्हें उपहार॥

●

दिवसे जाहारे करियाछिलाम हेला।
सेइ तो आमार प्रदीप रातेर बेला॥

– *रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

दिन में जिसकी मैंने की अवहेला।
मेरा वही प्रदीप रात की बेला॥

●

बहु दिन धरे, बहु क्रोश दूरे
बहु व्यय करि, बहु देश घूरे
देखते गियेछि पर्वतमाला, देखिते गियेछि सिन्धु
देखा हय नाइ चक्षु मेलिया
घर हते शुधु दुइ पा फेलिया
एकटि धानेर शिषेर उपरे एकटि शिशिर बिन्दु॥

– *रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

बहुत दिनों तक बहुत खर्च कर
देश-देश में दूर दूरतर
गया देखने पर्वतमाला, गया देखने सिन्धु,
किन्तु न देखा कभी आँख भर
घर से केवल दो कदमों पर
एक धान की बाली ऊपर एक ओस का बिन्दु।

●

तोमाके पावार जन्ये, हे स्वाधीनता !

– शमसुर्रहमान

तोमाके पावार जन्ये, हे स्वाधीनता,
तोमाके पावार जन्ये
आर कतबार भासते हबे रक्तगंगाय ?
आर कतबार देखते हबे खाण्डवदाहन ?

तुमि आसबे ब'ले, हे स्वाधीनता,
साकिना बिबिर कपाल भांगलो,
सिंथिर सिंदुर मुछे गेल हरिदासीर ।
तुमि आसबे ब'ले, हे स्वाधीनता,
शहरेर बुके जलपाइयेर रंगेर टैंक एलो
दानवेर मतो चित्कार कोर्ते कोर्ते
तुमि आसबे ब'ले, हे स्वाधीनता,
छात्रावास, बस्ति उजाड़ हलो । रिकॉयललेस राइफेल
आर मेशिनगान खइ फोटालो यत्रतत्र ।
तुमि आसबे ब'ले छाइ हलो ग्रामेर पर ग्राम ।
तुमि आसबे ब'ले विध्वस्त पाड़ाय प्रमुर वास्तुभिटार
भग्नस्तूपे दाँड़िये एकटाना आर्तनाद करलो एकटा कुकुर ।
तुमि आसबे ब'ले हे स्वाधीनता,
अबुझ शिशु हामागुड़ि दिलो पितामातार लाशेर ओपर ।

तोमाके पावार जन्ये, हे स्वाधीनता, तोमाके पावार जन्ये
आर कतबार भासते हबे रक्तगंगाय ?
आर कतबार देखते हबे खाण्डवदाहन ?

स्वाधीनता, तोमार जन्ये थुत्थुरे एक बुड़ो
उदास दावाय ब'से आछेन– ताँर चोखेर नीचे अपराह्नेर
दुर्बल आलोर झिलिक, बातासे नड़छे चुल ।

तुम को पाने के लिए हे स्वाधीनता !

तुम को पाने के लिए, हे स्वाधीनता !
तुम को पाने के लिए
और कितनी बार तैरना होगा रक्त गंगा में ?
और कितनी बार देखना होगा खांडव दाह ?

तुम आओगी, इसीलिए तो हे स्वाधीनता !
सकीना बीबी का फूट गया भाग्य,
पुँछ गया सिन्दूर हरिदासी की माँग का
तुम आओगी, इसीलिए तो हे स्वाधीनता !
शहर की छाती पर आये गहरे हरे रंग के टैंक।
दानव की तरह चीत्कार करते-करते।
तुम आओगी, इसी लिए तो हे स्वाधीनता !
उजड़े छात्रावास, जली बस्तियाँ, रिकागल लेस राइफलें
और मशीनगनें गरज उठीं जहाँ-तहाँ
तुम आओगी, इसी लिए तो राख हो गये गाँव के गाँव
तुम आओगी, इसी लिए तो टूटे-ढहे महल्ले में मालिक के मकान के
खँडहर पर खड़े हो कर लगातार रोता रहा एक कुत्ता
तुम आओगी, इसी लिए तो हे स्वाधीनता !
अबोध शिशु माँ-बाप की लाश पर चलता रहा घुटनियों

तुम को पाने के लिए हे स्वाधीनता, तुम को पाने के लिए
और कितनी बार तैरना होगा रक्त गंगा में ?
और कितनी बार देखना होगा खांडव दाह ?

स्वाधीनता, तुम्हारे लिए थरथराता एक बूढ़ा
उदास बैठा है बरांडे में– उस की आँखों के नीचे शाम की
धुँधली रोशनी की चमक है, हवा में उड़ रहे हैं उस के बाल

स्वाधीनता तोमार जन्ये
मोल्लाबाड़ीर एक विधवा दाँड़िये आछे
नड़बड़े खुँटि ध'रे दग्ध घरे।

स्वाधीनता तोमार जन्ये
हाड्डिसार एक अनाथ किशोरी शून्य थाला हाते
ब'से आछे पथेर धारे।
तोमार जन्ये
सगीर आली शाहबाजपुरेर सेइ जोवान कृषक,
केष्ट दास, जेलेपाड़ार सबचेये साहसी लोकटा,
मतलब मिया, मेघना नदीर दक्ष माझि,
गाजी गाजी ब'ले जे नौको चालाय उद्दाम झड़े
रुस्तम शेख, ढाकार रिक्शावाला, जार फुसफुस
एखन पोकार दखले
आर राइफेल काँधे बने जंगले घुरे-बेड़ानो
सेइ तेजी तरुण, जार पदभारे
एकटि नतुन पृथिवीर जन्म ह'ते चलेछे –
सबाइ अधीर प्रतीक्षा करछे तोमार जन्ये, हे स्वाधीनता।

पृथिवीर एक प्रान्त थेके अन्य प्रान्ते ज्वलन्त
घोषणार ध्वनि-प्रतिध्वनि तुले,
नूतन निशान उड़िये, दामामा बाजिये दिग्विदिक
एइ बाँगलाय
तोमाके आसतेइ हबे, हे स्वाधीनता !

स्वाधीनता, तुम्हारे लिए
मुल्ला परिवार की एक विधवा खड़ी है
जले घर की जर्जर खूँटी पकड़ कर
स्वाधीनता, तुम्हारे लिए
हड्डियों के ढाँचे सी एक अनाथ किशोरी सूनी थाली हाथ में लिये
बैठी है रास्ते के किनारे।

तुम्हारे लिए
सग़ीर अली, शाहबाजपुर का वह जवान किसान
केष्टोदास, जेले पाड़ा का सब से साहसी आदमी
मतलब मियाँ मेघना नदी का चतुर मल्लाह
गाजी, गाजी कह कर जो नौका खेता है प्रचण्ड तूफान में
रुस्तम शेख ढाके का रिक्शावाला, जिस के फेंफड़ों पर
कब्जा जमा लिया कीटाणुओं ने
और राइफल कन्धे पर रखे जंगल-जंगल घूमने वाला
वह तेजस्वी तरुण, जिस की पदचाप से
एक नयी धरती का जन्म होने वाला है
ये सभी अधीर प्रतीक्षा कर रहें हैं तुम्हारे लिए स्वाधीनता।

पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक ज्वलन्त
घोषणा की ध्वनि-प्रतिध्वनि गुँजाते
नया झण्डा उड़ाते, दिशा-दिशा में दमामा बजाते
इस बँगलादेश में
तुम्हें आना ही पड़ेगा, हे स्वाधीनता !

●

प्रवेशाधिकार नेइ

– शमसुर्रहमान

प्रवेशाधिकार नेइ । एखन आमार आनन्देर
दु:खेर क्रोधेर
क्षोभेर प्रेमेर
प्रवेशाधिकार नेइ मनुष्यसमाजे ।
आगे आमि आनन्दित ह'ले
एकटि कविता लिखे खातार पाताय
सेइ आनन्देर छायाटिके राखतुम ध'रे ।
आमार शय्यार पाशे दु:ख कोनोदिन
हाँटु मुड़े बसले नि:शब्द
आमि तार छबि शब्दे छन्दे आँकतुम खुब
विषादे आच्छन्न ह'ये । क्रोधान्वित ह'ले,
क्रोधेर गरगरे चिह्नगुलि थाकतो छड़िये
दुर्वासार मतो जेदी पयारेर प्रतिटि सारिते ।
भालोबासा पल्लवित वृक्षेर मतन
केमन दाँड़ातो ऋजु शब्देर अरण्ये ।

आमार आनन्द, दु:ख, क्रोध, क्षोभ, भालोबासा
नानान कविता ह'ये मानुषेर काछे
पौंछे जेतो यथारीति । एखन आमार आनन्देर
दु:खेर क्रोधेर
क्षोभेर प्रेमेर
प्रवेशाधिकार नेइ मनुष्यसमाजे ।

एखन आमार क्रोध दु:ख
आनन्द अथवा भालोबासा कविताय छद्मवेशे
केवलि लुकाय
देराजेर एकान्त कोटरे

निभृत आलमारि किंवा सुटकेसे । जेनो
ओरा पार्टिकर्मी,
गोयन्दा एवं पुलिसेर
चोखे धुलो दिये
आड़ाले थाकते चाय धरपाकड़ेर मरशुमे ।

नहीं है प्रवेशाधिकार

नहीं है प्रवेशाधिकार। अब मेरे आनन्द का
दुख का, क्रोध का
क्षोभ का, प्रेम का
नहीं है प्रवेशाधिकार मनुष्य-समाज में।
पहले मैं आनन्दित होने पर
एक कविता लिख कर कापी के पन्नों पर
उस आनन्द की छाया को पकड़ रखता था,
मेरी शैया के पास यदि दुख किसी दिन
घुटनों को मोड़ निःशब्द बैठता, तो
मैं उस की छबि शब्दों, छन्दों में आँकता खूब
बिषाद से आच्छन्न हो, क्रोधित होने पर
क्रोध के गड़गड़ाते चिह्न बिखरे रहते
दुर्वासा की तरह क्रुद्ध छन्दों की प्रति पंक्ति में,
पल्लवित वृक्ष की तरह प्रेम
कैसा खड़ा रहता ऋजु शब्दों के अरण्य में।
मेरे आनन्द, दुख, क्रोध, क्षोभ, प्रेम
नाना कविताओं में ढल कर मनुजों के निकट
पहुँच जाते यथारीति ! अब मेरे आनन्द का,
दुख का, क्रोध का,
क्षोभ का, प्रेम का,
नहीं है प्रवेशाधिकार मनुष्य-समाज में।
अब मेरे क्रोध, दुःख
आनन्द अथवा प्रेम कविता के छद्म-वेश में
केवल छिपा करते हैं
दराज के सूने कोटर में
निभृत अलमारी या सूटकेस में; मानो
वे कार्यकर्ता हों पार्टी के
जासूसों और पुलिस की
आँखों में धूल झोंक कर
ओट में रहना चाहते हों
धरपकड़ के इस मौसम में। ●

मुजीबेर जन्मदिने

– बेगम सूफिया कमाल

तव जन्मक्षण
एकक तोमार नहे । निपीड़ित लक्ष जनगण
नव जन्म लभि चेतनार
तोमारे लभिया काछे हयेछे दुर्वार ।
दुर्योगेर रात्रिभोरे सर्वहारा प्राण
शुनि नवो - बेलाल आजान
दाँड़ायेछे आसि मयदाने –
तोमार आह्वान तारा शुनियाछे काने ।
प्राणे प्राणे जागियाछे साड़ा
सम्मुखे तोमारे राखि ऊर्ध्वे हात तुलियाछे तारा ।
निरस्त्र जनता –
हे अग्रनायक ! तुमि निरस्त्रेर इ नेता ।

हे संग्रामी ! साहसी निर्भीक !
तव जयध्वनि दिक् दिक्
प्लाविया उठेछे ऊर्ध्वाकाशे
पीड़क शासक ताइ शंकित हृदये काँपे त्रासे ।
लोभ - स्वार्थ - हिंसाहीन एकनिष्ठ वीर !
दाँड़ायेछो ऊँचु करि शिर ।
से शिरे वर्षुक अहर्निश
विधातार मंगल आशीष ।
शतायु हइयो तुमि, केटे जाक् शंका ओ संशय,
ए माटिर सुसन्तान ! होक् तव जय ।

मुजीब के जन्मदिन पर

तुम्हारा जन्म क्षण
केवल तुम्हारा नहीं। पीड़ित लक्ष-लक्ष जन-गण
चेतना का नवजन्म पा कर
साथ पा तुम को हुए अडिग, निडर !
संकटों की रात्रि की इस भोर में सर्वहारा प्राण
सुन कर नव-बेलाल-अजान
खड़े हो गये आ कर रण मैदान में
आह्वान तुम्हारा पहुँचा जैसे उन के कान में।
प्राण-प्राण में जाग उठा है स्पन्दन
रख कर सम्मुख तुम्हें कर रहे वे अनुगर्जन
निरस्त्र जनता
हे अग्रनायक ! तुम अस्त्रहीनों के नेता !

हे संग्रामी, साहसी निर्भीक
दिशा-दिशा में गूँज रही तव जय-ध्वनि
प्लावित ऊर्ध्वाकाश
पीड़क शासक उर में भरता शंका, कम्पन त्रास !
लोभ-स्वार्थ से रहित, अहिंसक एकनिष्ठ तुम वीर
खड़े हुए हो ऊँचा कर निज शीश
उस पर बरसे दिन-रात विधाता का मंगल-आशीष !
हो शतायु तुम, जाये कट शंका-संशय
इस माटी की सुसन्तान ! तुम्हारी जय !

●

आमार हातेइ चाबी

– नसीमुन आरा

अन्धकार गाढ़तर होक
आर ओ भयावह रंग घिरूक आकाशे ।
आमाके देखाबे भय
ता' हबार नय ।
ए' आँधार कूलप्लावी
कत क्षण रबे ?
तिमिर हननेर गान
आमार कण्ठे ।
आमार हातेइ चाबी
आगामी दिनेर ।
जतो पारो सुकौशले
एँटे दाओ द्वार ।
निपीड़न हिंस्र, हिंसा-
उद्यत बुलेटे,
आर ओ किछु क्षण करो वेदनामथित ।
निदारुण विषादित हाहाकार
धूमायित हताशाय
पेयाला भरे दाओ ।
बेयोनेट मिथ्येर धूम्रजाले
घिरूक आकाश ।
खुले जाबे सिंहद्वार
ए कुयाशा कत क्षण थाके ?
तिमिर हननेर गान
आमार कण्ठे ।
आमार हातेइ चाबी
आगामी दिनेर ।

चाबी है मेरे ही हाथ में

हो ले अँधेरा और गाढ़ा,
और भी भयावह रंग घिर आयें आकाश में,
मुझ को डरा पाना
अब सम्भव नहीं।
किनारों को डुबो देने वाला यह अँधेरा
रहेगा कितनी देर ?
अँधेरे को चीर देने वाला गान
है मेरे कण्ठ में।
चाबी है मेरे ही हाथ में
आने वाले दिन की।
जितना सको धूर्तता से
कस कर बन्द कर दो द्वार
निपीड़न, हिंस्र अत्याचार
चला लो गोलियाँ
और कुछ दिन कर लो यन्त्रणा-मंथित।
निदारुण विषादित हाहाकार
धूमायित हताशा से
भर दो यह पात्र।
संगीनों के बल झूठ के धुँए से
ढक दो आकाश।
खुल जायेगा सिंहद्वार
यह कुहासा टिक सकेगा कितनी देर ?
अँधेरे को चीर देने वाला गान
है मेरे कण्ठ में
चाबी है मेरे ही हाथों में
आने वाले दिन की।

●

ब्लड बैंक

—हुमायूँ आज़ाद

बाँगलार माटीते केमन रक्तपात हच्छे प्रतिदिन
प्रतिटि पथिक किछु रक्त रेखे जाय
ब्लड बैंके : बांगलार माटीते
जमा राखे भविष्यत् भेवे
प्रतिटि श्रमिक तार चलार कुटिल पथे राखे रक्त-सूर्य-बीज
ग्रामवासी चाषी आर नड़ो-बड़ो वृद्ध कैनवासर
सबाइ रक्त राखे ब्लड बैंके
बाँगलार सब रक्त तीव्र भावे माटी, अभिमुखी।
शुकाते पारे ओ पद्मा, उबे जेते पारे ओ सागर
बाँगलार निसर्ग-माला, एक दिन झरे जेते पारे
तबु एइ रक्त थेके एक दिन
पाबोइ नतुन पद्मा, सुनिसर्ग माला
उठे जावा सेइ ग्राम टारे।
के आर रक्त राखे ब्लड बैंके, हासपाताले
सेखाने लाल रक्त घोला हये जाय
काँचेर शीशी औषुधेर विषाक्त छोंयाय
बाँगलार माटीर मतो ब्लड बैंक आर नेइ
एक बिन्दु लाल रक्त
दश बिन्दु हये जाय सेइ बैंके राखार साथेइ
ताइ आर जाय ना केउ ब्लड बैंके हासपाताले
बाँगलार सब रक्त तीव्र भावे माटी अभिमुखी।

ब्लड बैंक

बंगाल की धरती पर कैसा रक्तपात हो रहा है प्रतिदिन
प्रत्येक पथिक कुछ खून जमा कर जाता है
ब्लड बैंक में, बंगाल की धरती में।
जमा करता है भविष्यत् का विचार कर
प्रत्येक श्रमिक अपने टेढ़े-मेढ़े पथ पर छींटता चलता है रक्त-सूर्य-बीज
गाँव का किसान और जर्जर बूढ़ा फेरीवाला
सभी जमा करते हैं खून ब्लड बैंक में
बंगाल का सब खून बह रहा है तेजी से धरती की ओर
सूख जा सकती है पद्मा, पट भी जा सकता है सागर
बंगाल की प्रकृति-माला एक दिन झड़ जा सकती है
तो भी इस खून से एक दिन
मिलेगी ही नयी पद्मा, सुन्दर प्रकृति-माला
निश्चिह्न हो गया वह गाँव
कौन अब खून जमा करे अस्पताली ब्लड बैंक में
वहाँ लाल खून गंदला हो जाता है
काँच की शीशी और ओषधि के विषाक्त स्पर्श से
बंगाल की धरती की तरह नहीं है ब्लड बैंक और
एक बूँद लाल खून
दस बूँद हो जाता है उस बैंक में जमा करते ही
इसीलिए जाता नहीं कोई अब अस्पताली ब्लड बैंक में
बंगाल का सब खून बह रहा है तेजी से धरती की ओर।

●

गीतारा कोथाय जाबे

– जसीमुद्दीन

गीतारा कोथाय जाबे ?
कोथाय जाइया पाबे आश्रय ठाँइ ?
सामने पेछने डाहिने ओ वामे
ताहादेर तरे कोनो बान्धव नाइ ।
मानुष बाघेरा फिरिछे घुरिया प्रसारि हिंस्र दाँत
जे देबे तादेर आश्रय तार
घर बाड़ी सब पुड़िबे अकस्मात् ।
वने पलाइले वन हते तारे खुजिया बाहिरे आनि
निमिषेर माझे करे देबे शेष बुलेटे आघात हानि ।
वनेर बाघेर थामित जे थाबा
हयतो हेरिया सेइ चाँद मुख पाने,
सापेरा हयतो गुटाइतो फणा
बाँशीर मतन से मुखेर कथा
शुनिया लइत काने ।

मानुष बाघेरा ए सब बुझे ना,
मानुष सापेरा कत जे हिंस्र हाय !
गीतार मतन शत छेले मेये
आछाड़िया मारि दलेछे निठुर पाय ।
तारा आर कभु मा बोल बलिया
जुड़ाबे ना मार कोल
तारा आर कभु घरे फिरिबे ना
सन्ध्याबेलाय करिया काकली-रोल ।

गीतारा कोथाय जाबे ?
कोथाय ममता, कोथा स्नेह आर माया
काहारे आजिके ए देश हइते
मुछिया फेलेछे सकल शीतल छाया ।

कहाँ जायेंगी ये गीताएँ

कहाँ जायेंगी ये गीताएँ, कहाँ पायेंगी आश्रय ?
आगे-पीछे, दायें-बायें, बन्धु न कोई निर्भय।
मनुज रूप में बाघ घूमते हिंस्र दाँत-नख जिन के
शरण इन्हें जो देंगे, होंगे भस्मसात् घर उन के।
भागें यदि वन में तो वन से इन्हें ढूँढ लायेंगे,
क्षण भर में गोली बरसा कर उन्हें भून जायेंगे।
वन के बाघ रोकते पंजा देख चंद्रमुख इनका,
साँप झुका देते फण अपना मधुर शब्द सुन इनका।

मनुज बाघ यह नहीं समझते, मनुज साँप अति हिंसक,
गीता सी शत-शत किशोरियाँ कुचल दी गयीं धिक्-धिक्
माँ पुकार अब कभी न उन की गोद करेंगी शीतल
कभी साँझ को अब न फिरेंगी ये ध्वनि करतीं कलकल।

कहाँ जायेंगी ये गीताएँ कहाँ स्नेह माया है ?
आज देश से पोंछ किन्होने दी शीतल छाया है ?

●

The woods are lovely dark and deep
But I have promises to keep
And miles to go before I sleep
And miles to go before I sleep

– Robert Frost

वन तो हरा, घना सुहाना है
पर मुझे वादा निभाना है !
सोने के पहले, कोसों जाना है !!
सोने के पहले, कोसों जाना है !!!

●

Always to shine
and everywhere to shine
and to the very last
to shine
Thus runs my motto
and the sun's too.

– Mayakovsky

सदा चमको
हर कहीं चमको
आखिरी दम तक चमकते ही रहो,
यही आदर्श मेरा –
सूर्य का भी !

●

You are now so terribly far
Beyond oceans and oceans of snow.
You are out of my reach, like a star
And to death, it's just four steps to go.

— A. Surkov

आह कितनी दूर, कितनी दूर हो तुम।
सागरों हिमसागरों के पार।
परे मेरी पहुँच के वह तारिका हो तुम
और मृत्यु समीप कितनी –
फासला पग चार।

●

I know where the others have hearts,
In the chest, as everyone knows.
But in my case the anatomy went mad –
I'm one solid heart and it beats all over me.

— Mayakovsky

जानता हूँ दूसरों के दिल, कहाँ हुआ करते,
वक्ष में, जैसे कि हर इक जानता है।
किन्तु रचते वक्त मुझको प्रकृति पागल हो गई,
सिर्फ दिल हूँ मैं, धड़कता पाँव से सर तक !!

●

प्रेमशंकर त्रिपाठी

जन्म :
नवंबर १९५४, कलकत्ता में।
मूल निवासी उन्नाव (उ.प्र.) के राजापुर गढ़ैया (मगरायर) ग्राम के।

शिक्षा :
कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. (स्वर्णपदक प्राप्त), पी-एच. डी.। संप्रति : सुरेन्द्रनाथ सांध्य कालेज में रीडर और हिन्दी विभागाध्यक्ष, वर्दवान विश्वविद्यालय में हिन्दी के अंशकालिक प्राध्यापक।

कृतियां :
संपादित: (१) शास्त्रैरपि शस्त्रैरपि: आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री (२) विष्णुकान्त शास्त्री षष्टिपूर्ति अभिनन्दन ग्रन्थ (३) अमर आग है (श्री अटल बिहारी वाजपेयी की चुनी हुई कविताओं का संकलन) (४) महाप्राण निराला: पुनर्मूल्यांकन (५) मानस अनुक्रमणिका (६) कबीर ग्रंथ (शीघ्र प्रकाश्य)।

अन्य :
० 'कलकता टाइम्स' और 'नाटयवार्ता' का अरसे तक सम्पादन।
० विविध पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक कृतियों की समीक्षाएँ प्रकाशित।
० महानगर की विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं से सक्रिय रूप से संबद्ध।
० श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के साहित्य मंत्री।

सम्मान :
उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सम्मान से सम्मानित।

सम्पर्क :
आशीर्वाद अपार्टमेन्टस्
सी.ए. ५/१०, देशबंधु नगर, बागुईहाटी,
कलकत्ता - ७०० ०५९, ✆ ५५९-१५२२

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

जन्म : २ मई १९२९, कलकत्ता
शिक्षा : एम. ए., एल एल. बी.

१९५३ से कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक। आचार्य के रूप में २ मई १९९४ को अवकाश ग्रहण।

विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संस्थाओं के साथ सक्रिय रूप से संबद्ध। १९४४ से स्वयंसेवक के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबद्ध। १९७७ में जनता पार्टी में योगदान तथा १९८० में नवगठित भारतीय जनता पार्टी में शामिल। पश्चिम बंगाल भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष (दो बार), पश्चिम बंगाल विधान सभा सदस्य (१९७७ से १९८२), राष्ट्रीय उपाध्यक्ष-भाजपा (१९८८-९३), संसद सदस्य–राज्यसभा (१९९२ से जुलाई-१९९८)

महानगर की प्रतिष्ठित संस्थाओं: अनामिका, श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, बड़ाबाजार लाइब्रेरी, भारतीय भाषा परिषद, बंगीय हिन्दी परिषद, श्यामा प्रसाद मुखर्जी स्मारक समिति के महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी के रूप में कार्य। पूर्व न्यासी, भारत भवन, भोपाल।

देशभर के विश्वविद्यालयों में साहित्यिक व्याख्यानमालाओं में भागीदारी। भक्ति साहित्य, विशेषत: तुलसीदास के अधिकारी विद्वान।

विदेशयात्रा :

सुरीनाम, गयाना, त्रिनिडाड, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, प० जर्मनी, इटली, बांग्लादेश।

प्रकाशन :

मौलिक ग्रंथ : कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबंध (साहित्यिक समीक्षा), कुछ चन्दन की कुछ कपूर की (साहित्यिक समीक्षा), बांग्लादेश के संदर्भ में (रिपोर्ताज), चिन्तन मुद्रा (साहित्यिक समीक्षा), स्मरण को पाथेय बनने दो (संस्मरण एवं यात्रा वृत्तांत), अनुचिंतन (साहित्यिक समीक्षा), तुलसी के हिय हेरि (तुलसीदास पर केन्द्रित समीक्षात्मक निबंध), भक्ति और शरणागति, सुधियाँ उस चंदन के वन की (संस्मरण), ज्ञान और कर्म (ईशावास्य प्रवचन)

अनूदित : उपमा कालिदासस्य (बंगला से हिन्दी में अनूदित), संकल्प-संत्रास-संकल्प (बांग्लादेश की संग्रामी कविताओं का हिन्दी में काव्यानुवाद), महात्मागाँधी का समाज-दर्शन (अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित), अमर आग है (श्री अटल बिहारी बाजपेयी की चुनी हुई कविताओं का संकलन)

संपादित : दर्शक और आज का हिन्दी रंगमंच; बालमुकुंद गुप्त: एक मूल्यांकन; बांग्लादेश: संस्कृति और साहित्य; तुलसीदास: आज के संदर्भ में; कलकता १९९३

सम्मान :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल सम्मान, साहित्य भूषण सम्मान, डॉ राम मनोहर लोहिया सम्मान, राजर्षि टंडन हिन्दी सेवी सम्मान।

संपर्क :

२८०, चितरंजन एवेन्यू, कलकता - ७०० ००६, दूरभाष : २४१-१३४८